मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 105 ● वर्ष 11, अंक 12 ● फ़रवरी 2022 ● पाँच रुपये ● 16 पृष्ठ

मज़दूर बिगुल

बेरोज़गारी के भयंकर होते हालात और रेलवे के अभ्यर्थी छात्रों का आन्दोलन 7

कोरोना से हुई मौतों के आँकड़े छिपाने में जुटी मोदी सरकार के झूठों की खुलती पोल 6

कज़ाख़स्तान में आम मेहनतकश जनता की बग़ावत 11

मोदी सरकार का 2022-23 बजट

पूँजीपतियों की सेवा में बिछी मोदी सरकार की आम मेहनतकश जनता से फिर ग़द्दारी

जैसा कि अनुमान था, **मोदी सरकार का नया बजट भी मज़दूरों और आम मेहनतकश आबादी की पूँजीपतियों और धन्नासेठों द्वारा खुली लूट का इन्तज़ाम करने का दस्तावेज़ है।** आज जब कि बेरोज़गारी देश के मज़दूरों, कर्मचारियों और आम घरों से आने वाले नौजवानों के लिए सबसे बड़ा मुद्दा बनी हुई है और उत्तर प्रदेश और बिहार में इस पर युवाओं के स्वत:स्फूर्त आन्दोलन फूट रहे हैं, तो मोदी सरकार की वित्त मंत्री निर्मला सीतारमण ने बेरोज़गारी शब्द का अपने बजट भाषण में एक बार भी नाम नहीं लिया और 'नौकरी' शब्द का केवल एक जगह नाम लिया।

बेरोज़गारी का सच्चा आकलन किया जाये, तो क़रीब 25 से 30 करोड़ आबादी बेरोज़गार है। लेकिन ऐसी भयंकर स्थिति में भी 'अमृत काल' जैसे मज़ाक़िया सस्ते जुमलों का इस्तेमाल करके बजट भाषण बस दिखावटी जुमलेबाज़ी ही करता रहा।

लेकिन इस जुमलेबाज़ी में भी पूँजीपतियों के हितों का पूरा ख़्याल रखा गया है। पहले नोटबन्दी से अर्थव्यवस्था चरमरायी हुई थी और फिर कोविड महामारी के दौरान मोदी सरकार द्वारा अनियोजित तरीक़े से लॉकडाउन थोपने के कारण उस चरमरायी अर्थव्यवस्था की भी कमर टूट गयी। इसका सबसे बड़ा ख़ामियाज़ा मज़दूरों और ग़रीबों को भुगतना पड़ा है। अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र की हालत इस दौर में सबसे ज़्यादा ख़राब हुई, जिसमें कि भारत के समस्त मेहनतकशों का 94 प्रतिशत काम करता है। उनकी आय और जीवन-स्तर में भारी गिरावट आयी है। लेकिन मोदी सरकार के नये बजट में देश के करोड़ों मज़दूरों-मेहनतकशों को राहत देने के लिए कोई भी क़दम नहीं उठाया गया है। न तो उनकी खाद्य सुरक्षा की कोई बात की गयी है, न उनकी रोज़गार गारण्टी की कोई बात की गयी है और न ही उन्हें किसी अन्य प्रकार का राहत पैकेज दिया गया है।

सम्पादक मण्डल

बजट 2022 को क़रीब से देखने से ही पता चल जाता है कि पूँजीपतियों से पिछले वित्तीय वर्ष के दौरान भी हज़ारों करोड़ रुपये "चन्दे" में पाने वाली भाजपा ने इन्हीं पूँजीपतियों के हितों का पूरी तरह से ध्यान रखा है। इसके लिए मोदी सरकार के बजट में विशेष तौर पर मज़दूर वर्ग की औसत मज़दूरी को और कम करने और पूँजीपतियों को मुनाफ़ाख़ोरी के नये क्षेत्र मुहैया कराने पर पूरा ज़ोर दिया गया है। बजट 2022 में उठाये गये इन क़दमों की समीक्षा करने से पहले इस बात को समझना ज़रूरी है कि ये क़दम किस प्रकार पूँजीपति वर्ग को लाभ पहुँचाने वाले हैं।

अर्थव्यवस्था का गहराता संकट

पिछले आठ वर्षों में अर्थव्यवस्था के निजी क्षेत्र में निवेश की दर में 1991 के बाद से सबसे बड़ी गिरावट आयी है। इसका कारण है वैश्विक मन्दी का असर और स्वयं भारत की अर्थव्यवस्था में मुनाफ़े की गिरती दर का संकट। यह पूँजीवाद का चक्रीय क्रम में आने वाला संकट है, जिससे पूँजीवाद कभी निजात नहीं पा सकता है। इसकी वजह यह है कि पूँजीवादी व्यवस्था में उत्पादन का लगातार समाजीकरण होता जाता है, लेकिन उसमें उत्पादन व उत्पादन के साधनों का मालिकाना निजी होता है। मुनाफ़े पर टिकी ऐसी व्यवस्था में निजी पूँजीपति लगातार बाज़ार का अधिक से अधिक हिस्सा हथियाने की आपसी होड़ में लगे होते हैं। इसी होड़ में वे लगातार श्रम की उत्पादकता को बढ़ाने

(पेज 9 पर जारी)

पाँच राज्यों के विधानसभा चुनाव : मज़दूर वर्ग और आम जनता के सामने विकल्प क्या है?

इन्द्रजीत

उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तराखण्ड, गोवा और मणिपुर के विधानसभा चुनाव एकदम सिर पर हैं। इन पाँच राज्यों के सात चरणों में होने वाले चुनावों में वोट पड़ने की शुरुआत 10 फ़रवरी से हो जायेगी तथा चुनाव परिणाम 10 मार्च को घोषित कर दिये जायेंगे। पूँजीपति वर्ग की विभिन्न चुनावबाज़ पार्टियाँ जोश-ओ-ख़रोश के साथ चुनावी नूराकुश्ती के मैदान में डटी हुई हैं। जिस तरह से बारिश के मौसम में गन्दे नालों का पानी एक नाले से दूसरे नाले में आता-जाता रहता है ठीक वैसे ही चुनावबाज़ पार्टियों के नेता भी एक पार्टी से दूसरी पार्टी में मिल रहे हैं। तमाम दलों की एक-दूसरे का सात जन्मों तक साथ निभाने वाली क़समों के पुराने 'एफ़िडेविट' रद्दी की टोकरियों की भेंट चढ़ रहे हैं और नित नये "ठगबन्धन" क़ायम हो रहे हैं। पंजाब को छोड़कर बाकी सभी राज्यों में पहले से भाजपा और एनडीए गठबन्धन की ही सरकारें क़ायम थीं। अब अन्य दल जाति के समीकरण बैठाने, झूठे वायदे करने और सरकारी पक्ष को घेरने में लगे हैं तो भाजपा साम्प्रदायिक एजेण्डे को नयी ऊँचाइयों तक पहुँचाने में जुटी हुई है।

उत्तर प्रदेश का चुनाव विभिन्न बुर्जुआ दलों और चुनाव विश्लेषकों के ध्यान का प्रमुख केन्द्र बना हुआ है। ऐसा हो भी क्यों नहीं, यहाँ विधान सभा की 404 तो लोकसभा की 80 सीटें जो हैं। यहाँ 2017 से योगी आदित्यनाथ के मुख्यमंत्रीत्व में भाजपा की सरकार क़ायम है। भाजपा सरकार बनने के बाद से अब तक साम्प्रदायिक नफ़रत के मोर्चे को छोड़कर हर मोर्चे पर बुरी तरह से विफल साबित हुई है। रोज़गार, चिकित्सा, शिक्षा, प्रशासन और आर्थिक मोर्चे पर योगी सरकार की भयानक रूप से भद्द पिटी हुई है। मानव विकास के तमाम मानकों पर यूपी सरकार फिसड्डी साबित हुई है। लोगों ने न केवल कोरोना काल में सत्ता की अक्षम्य लापरवाही झेली और गंगा के घाट लाशों से पट गये बल्कि इससे पहले भी अस्पतालों, विद्यालयों के हालात किसी से छिपे नहीं थे। अल्पसंख्यकों, दलितों, महिलाओं और ग़रीबों पर योगी सरकार किसी आफ़त की तरह टूट पड़ी। ज़हरखुरानी गिरोह के शिकार हुए लोगों को छोड़कर प्रदेश की ज़्यादातर जनता आज सत्ता की बेरुख़ी, दमन, साम्प्रदायिक तनाव से आजिज़ आ चुकी है।

पिछले पाँच साल की कारगुज़ारियों की वजह से यूपी में भाजपा की हालत कुछ पतली नज़र आ रही है। इस बात को भाजपा का नेतृत्व भी अच्छी तरह से जानता है। यही कारण है कि इस समय भाजपा का नफ़रती गिरोह पूरी नंगई के साथ साम्प्रदायिक ज़हर फैलाने

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

लोकतंत्र के बारे में नेता से मज़दूर की बातचीत

लोकतंत्र का हमारे लिए बस यही मतलब है
कि सुनते रहें आपके भाषण और लगाते रहें
मतपत्र पर छापा।
फिर पाँच साल तक संसद में आप लगाते रहें लोट
ऊँघते रहें और छोड़ते रहें गैस
आपके कुनबे वाले करते रहें ऐश,
दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती जाये
आपकी दौलत और आपका मोटापा।
इस लोकतंत्र में कारख़ानों में राख हो जाती है
हम मज़दूरों की जवानी
और दिप-दिप दमकता है मुफ़्तख़ोरों का बुढ़ापा।
आप तो हैं उन्हीं के टुकड़ख़ोर
जो हमारी हड्डियों का चूरा तक बनाकर
बेच देते हैं बाज़ारों में,
फिर करते हैं दान-धरम और लगाते हैं तिलक छापा।
आप मनाते हैं न जाने कितने तरह के जश्न
जब हमारी बस्तियों में होता है सन्नाटा और सियापा।
हमारी बदतमीज़ी के लिए आप क़त्तई
हमें माफ़ नहीं करेंगे
पर हम यह कहे बिना रोक नहीं पा रहे हैं अपने आपको
कि ये जो "दुनिया का सबसे बड़ा लोकतंत्र"
है न महामहिम!
है ये अजब तमाशा और ग़ज़ब चूतियापा!

– नकछेदी लाल, बादली

क्या आप मज़दूर बिगुल के रिपोर्टर बनेंगे?

क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों के जीवन, उनके काम के हालात, उनकी समस्याओं और संघर्षों के बारे में आप जैसे देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को और देश के आम नागरिकों को पता चले?
क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों की ख़बरें जो हर मीडिया से ग़ायब रहती हैं, वे मज़दूरों के अपने अख़बार के ज़रिए लोगों तक पहुँचें?

तो क़लम उठाइए और अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव हमें भेजिए।

'मज़दूर बिगुल' आपका अपना अख़बार है। यह उन तमाम मेहनतकशों की आवाज़ है जिनकी बात इस देश के दर्जनों टीवी चैनलों और हज़ारों अख़बारों में कहीं सुनायी नहीं देती, मगर जिनकी मेहनत के बग़ैर यह देश एक दिन भी चल नहीं सकता।

आपको अगर टाइप करने में समस्या है तो काग़ज़ पर लिखकर उसकी फ़ोटो लेकर हमें व्हाट्सऐप पर भेज दीजिए। आप फ़ोन पर, व्हाट्सऐप पर या बिगुल के साथियों से मिलकर भी उन्हें जानकारियाँ दे सकते हैं। इसके बारे में कुछ भी जानने के लिए हमसे सम्पर्क करिए या अपने इलाक़े में 'मज़दूर बिगुल' बाँटने वाले साथियों से बात करिए।

आप इन तरीक़ों से अपनी बात हमारे तक पहुँचा सकते हैं :

डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**

व्हाट्सऐप नम्बर : 9721481546

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" **– लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।
बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।
सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं। मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigul
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 70 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 2000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 9721481546
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 8860792320
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 5/- रुपये वार्षिक – 70/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 2000/- रुपये

दिल्ली की आँगनवाड़ी महिलाकर्मी 31 जनवरी से अनिश्चितकालीन हड़ताल पर!

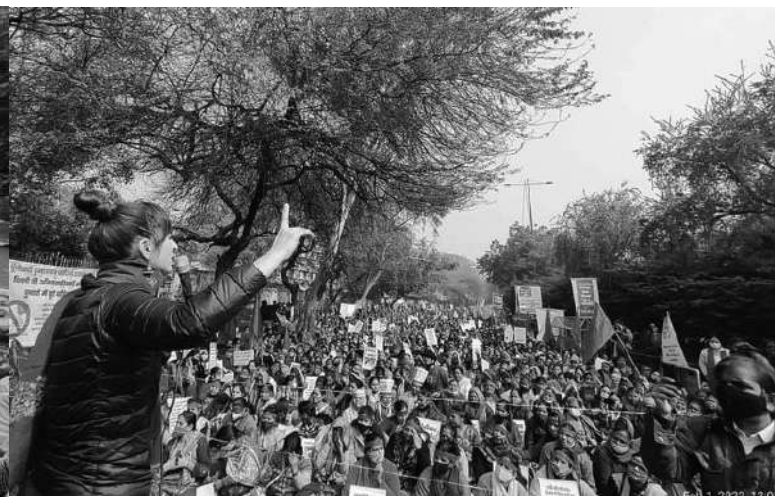

दिल्ली की आँगनवाड़ी महिलाकर्मी अपनी जायज़ माँगों को लेकर लगातार संघर्षरत हैं। यह रिपोर्ट लिखे जाने तक अनिश्चितकालीन हड़ताल के तीसरे दिन हज़ारों की संख्या में आँगनवाड़ी स्त्री कामगार केजरीवाल आवास के बाहर अपनी माँगें उठा रही हैं।

मालूम हो कि केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा अपने माँगपत्रक पर कोई ठोस कार्रवाई न होने की सूरत में 22,000 वर्कर्स और हेल्पर्स 31 जनवरी से दिल्ली की आँगनवाड़ी केन्द्रों का काम ठप्प कर अनिश्चितकालीन हड़ताल पर हैं।

दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स और हेल्पर्स यूनियन की अध्यक्ष शिवानी ने बताया कि "आँगनवाड़ीकर्मी तब तक काम पर नहीं लौटेंगी जब तक माँगें मान नहीं ली जाती हैं। 7 सितम्बर 2021 के चेतावनी प्रदर्शन के बाद दिल्ली सरकार के महिला एवं बाल विकास मंत्री राजेन्द्र पाल गौतम ने एक हफ़्ते के भीतर हमारी माँगों पर ठोस कार्रवाई का आश्वासन दिया था। लम्बे इन्तज़ार के बाद भी कोई जवाब न मिलने पर 6 जनवरी को एक बार फिर आँगनवाड़ीकर्मियों ने एकदिवसीय हड़ताल कर काम ठप्प किया और मंत्री महोदय की याददिहानी के लिए अपना माँगपत्रक सौंपा। मगर पंजाब चुनाव प्रचार में व्यस्त केजरीवाल सरकार को दिल्ली की आँगनवाड़ीकर्मियों की समस्या नहीं दिखी। इसलिए, हमने यह ऐलान किया है कि अब और ग़ुलामी हमें मंज़ूर नहीं।"

देशभर के कई राज्यों में आँगनवाड़ी महिलाकर्मी अपनी माँगों के लिए संघर्षरत हैं

केन्द्र सरकार और अन्य राज्य सरकारों के लिए आँगनवाड़ी की महिलाएँ सस्ते श्रम का स्रोत हैं। 'स्वयंसेविकाओं' का दर्जा देकर सरकारें इनसे कई ऐसे काम कराती हैं, जो इनके कार्यभार का हिस्सा नहीं है। आँगनवाड़ी महिलाओं का काम बच्चों, गर्भवती व स्तनपान कराने वाली माओं के स्वास्थ्य जाँच व टीकाकरण का है, पोषाहार आवण्टन, 3-6 वर्ष की आयु के बच्चों के लिए अनौपचारिक प्रारम्भिक शिक्षा, सर्वेक्षण मात्र का है। मगर इसके अलावा उनसे जनगणना का काम, आधार कार्ड बनवाने का काम, गोदभराई, बीएलओ का काम, अन्नप्राशन, जानवरों का सर्वे इत्यादि कई ऐसे काम थोप दिये जाते हैं। "महिला सशक्तिकरण" के नाम पर "सहेली समन्वय केन्द्र" नाम की स्कीम चलाकर दिल्ली सरकार आँगनवाड़ी महिलाओं को इलाके की स्त्रियों को सशक्त करने का ज़िम्मा सौंप रही है। मगर, यह भी एक मज़ाक़ ही है कि 9698 रुपये और 4839 रुपये के मानदेय में बेगारी खट रही महिलाएँ अन्य महिलाओं को "सशक्त" करेंगी!

कोरोना महामारी के दौरान आँगनवाड़ीकर्मियों ने अपनी ज़िम्मेदारी का परिचय देते हुए अग्रिम पंक्ति में खड़े होकर काम किया। वैक्सीनेशन से लेकर कोरोना मरीज़ों को दवा पहुँचाने तक का अतिरिक्त कार्य किया मगर न तो केन्द्र न ही दिल्ली सरकार ने उन्हें बचाव के लिए ज़रूरी साधन मुहैय्या कराये।

बेगारी खटवाने के ख़िलाफ़ व अपनी अन्य जायज़ माँगों को लेकर 31 जनवरी से वर्कर्स और हेल्पर्स अनिश्चितकालीन हड़ताल पर हैं। इससे पहले 2017 में 58 दिनों तक चली हड़ताल के बाद केजरीवाल सरकार को राजपत्र जारी कर आँगनवाड़ीकर्मियों का मानदेय दोगुना करना पड़ा था।

मगर आज 2022 में भी महिलाकर्मी उसी मामूली मानदेय पर काम करने को मजबूर हैं।

2017 की तुलना में आज 2022 में महँगाई की रफ़्तार ने बुलेट ट्रेन की रफ़्तार को पछाड़ दिया है। तमाम आवश्यक वस्तुओं की क़ीमतों में बेतहाशा वृद्धि हुई है। पेट्रोल-डीज़ल के दामों से लेकर, तेल, गैस,कपड़ों, दवाइयों, शिक्षा इत्यादि पर होने वाले ख़र्चे बेहिसाब बढ़े हैं, मगर आँगनवाड़ीकर्मियों के मानदेय में कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई है।

हमारी मानदेय बढ़ोत्तरी की माँग पर कम्बल तानकर सोयी हुई केजरीवाल सरकार "पंजाब चुनाव" के मद्देनज़र वहाँ की आँगनवाड़ीकर्मियों को गुलाबी सपने दिखा रही है। महामारी के दौरान आँगनवाड़ीकर्मियों और दिल्ली की आम जनता के स्वास्थ्य से खिलवाड़ कर इस सरकार ने अगस्त 2021 में अपने विधायकों की तनख़्वाह में 66% की बढ़ोत्तरी कर दी।

वहीं अब इस "आम आदमी पार्टी" ने मार्च 2020 से जुलाई 2021 तक 490 करोड़ अपने चुनाव प्रचार के विज्ञापनों में बहा दिये (हर महीने 29 करोड़), जो दिल्ली की 22,000 आँगनवाड़ीकर्मियों को मिलने वाले मानदेय की राशि से दोगुना है। जनता की गाढ़ी कमाई को अपने चुनावी प्रचार पर उड़ाने में केजरीवाल

(पेज 4 पर जारी)

दिल्ली की आँगनवाड़ी महिलाकर्मी 31 जनवरी से अनिश्चितकालीन हड़ताल पर!

(पेज 3 से आगे)

सरकार ने भाजपा को टक्कर देने की ठानी है।

दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन के नेतृत्व में 31 जनवरी से शुरू हुई इस हड़ताल में आँगनवाड़ीकर्मियों ने न सिर्फ़ अपना काम ठप्प किया है बल्कि इन तमाम चुनावबाज़ पार्टियों के आँगनवाड़ीकर्मी विरोधी चरित्र व जनविरोधी चरित्र का पर्दाफ़ाश भी कर रहीं हैं। यूनियन ने यह घोषणा की है कि "आँगनवाड़ी महिलाओं के माँगपत्रक को नज़रअन्दाज़ करने वाली पार्टियों का हम पूर्ण रूप से और सक्रिय बहिष्कार करेंगी। वोट देना या नहीं देना तो दीगर बात है। जो भी पार्टियाँ लिखित तौर पर एक समयसीमा के अन्दर हमारी तमाम माँगों को पूरा करने का वायदा नहीं करेंगी, हम उनका न केवल दिल्ली के नगर निगम चुनावों में बहिष्कार करेंगी, बल्कि पंजाब, उत्तर-प्रदेश, गोवा, उत्तराखण्ड विधानसभा चुनावों में भी आँगनवाड़ीकर्मियों की टीमें भेजकर व सोशल मीडिया के ज़रिए व्यापक भण्डाफोड़ करेंगी।"

आँगनवाड़ीकर्मियों की चल रही अनिश्चितकालीन हड़ताल में कई प्रगतिशील संगठनों ने अपना समर्थन दिया। भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी (RWPI) से सनी ने अपनी बात रखते हुए आँगनवाड़ी स्त्री कामगारों की सभी माँगो का बिना शर्त समर्थन किया।

इसके अलावा प्रगतिशील महिला संगठन से पूनम कौशिक, इफ़्टू दिल्ली के महासचिव राजेश कुमार, डीटीसी कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन से बाल्मीकि झा, ऑटोमोबाइल इण्डस्ट्री कॉण्ट्रैक्ट वर्कर्स यूनियन से शाम शामिल रहे और अपना समर्थन दिया। इसके अलावा प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट्स लीग के छात्र-नौजवान भी हड़ताल में अपनी कला के ज़रिए संघर्षरत महिलाओं के साथ अपनी एकजुटता पेश कर रहे हैं। हरियाणा की क्रान्तिकारी मनरेगा मज़दूर यूनियन ने भी संघर्षरत महिलाओं से एकजुटता ज़ाहिर करते हुए सन्देश भेजा।

महिलाओं ने केजरीवाल सरकार और विभाग की हर चाल को नाकामयाब किया!

अरविन्द केजरीवाल और आम आदमी पार्टी के पालतू बन चुके महिला एवं बाल विकास विभाग ने हड़ताल को तोड़ने की कई साज़िशें की। हड़ताल की घोषणा सुनते ही विभाग ने कार्यकर्ताओं एवं सहायिकाओं को नेतृत्व से अलग करने के लिए अपने सारी तिकरमें लगा दीं लेकिन आँगनवाड़ी की महिलाओं ने अपनी यूनियन दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन के कुशल नेतृत्व में बेहतरीन जवाब दिया और विभाग की हर चाल को नाकाम किया।

आन्दोलनकारी आँगनवाड़ी कर्मी साथ आये बच्चों के लिए धरना स्थल पर ही क्रेच भी चला रही हैं और उनकी पढ़ाई में भी कोई व्यवधान नहीं पड़ने दे रही हैं

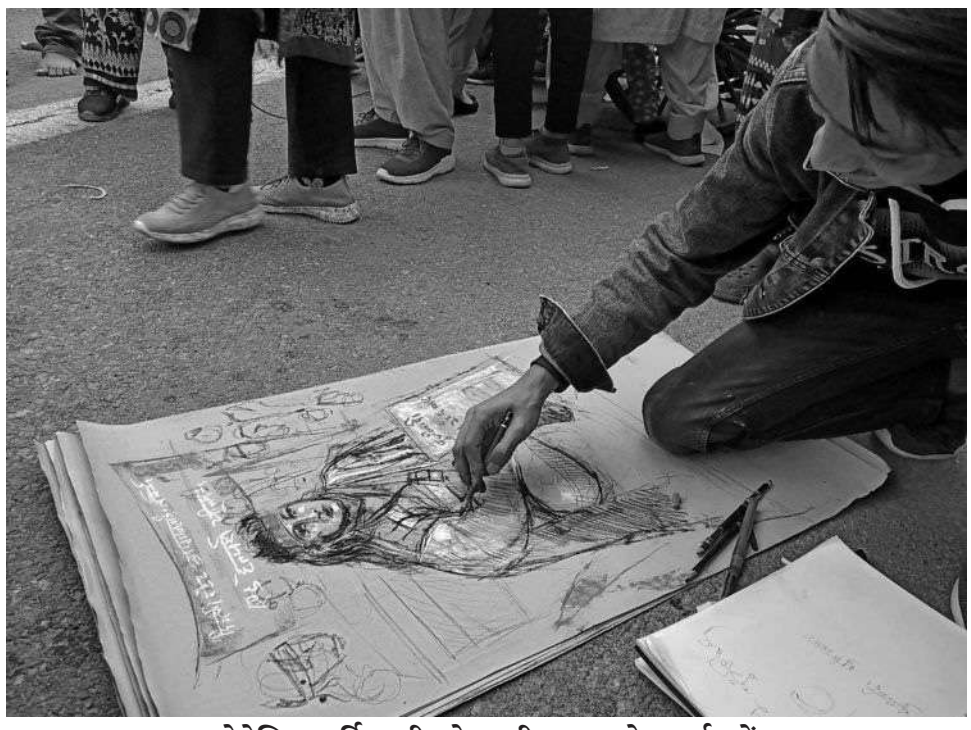

प्रोग्रेसिव आर्टिस्ट लीग के साथी हड़ताल के समर्थन में

अरविन्द केजरीवाल की सरकार की चालबाज़ियाँ उल्टी पड़ीं और महिलाओं का सरकार के ख़िलाफ़ ग़ुस्सा और तेज़ हो गया और यूनियन के नेतृत्व और राजनीति पर भरोसा और दृढ़ हुआ।

दिल्ली की आँगनवाड़ी महिलाओं के संघर्ष में यह एक ऐतिहासिक और अभूतपूर्व हड़ताल है क्योंकि इस बार पूरी दिल्ली के 95 फ़ीसदी सेण्टर्स पर ताले लगे हैं और महिलाएँ हड़ताल स्थल पर अपने नारों और बैनर-झण्डों के ज़रिए अपनी आवाज़ बुलन्द कर रही हैं।

बिगुल मज़दूर दस्ता दिल्ली की आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों की हड़ताल का समर्थन करता है।

आँगनवाड़ीकर्मियों की एकता ने पहले भी दिखाया है कि मज़दूरों की एकजुटता, सही राजनीतिक दिशा व नेतृत्व संघर्षरत मज़दूरों को उनका हक़ दिला सकता है।

दिल्ली स्टेट आँगनवाड़ी वर्कर्स एण्ड हेल्पर्स यूनियन का माँगपत्रक :-

• हमारी ज़िम्मेदारी और महँगाई को ध्यान में रखते हुए सरकार हमारे मानदेय में तत्काल प्रभाव से बढ़ोत्तरी कर कार्यकर्ता एवं सहायिका को क्रमशः 25,000 रुपये व 20,000 रुपये के हिसाब से मानदेय का भुगतान करे।

• दिल्ली व केन्द्र सरकार यह सुनिश्चित करे कि केन्द्र सरकार द्वारा घोषित व 1 अक्तूबर 2018 से लागू मानदेय वृद्धि की बकाया राशि (जनवरी 2022 तक 39 महीनों के लिए कार्यकर्ता व सहायिका को क्रमशः 58,500 रुपये व 29,250 रुपये) का तुरन्त भुगतान किया जाये।

• आँगनवाड़ीकर्मियों को रिटायरमेण्ट सुविधाएँ दी जायें।

• दिल्ली व केन्द्र सरकार द्वारा आँगनवाड़ीकर्मियों को बेगार खटवाने के लिए 'सहेली समन्वय केन्द्र' खोलने व नयी शिक्षा नीति के फ़ैसले वापस लिये जायें। आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों के कार्यदिवस को बढ़ाने का फ़ैसला तत्काल वापस लिया जाये।

• कोविड महामारी के दौरान कार्यरत महिलाकर्मियों के लिए सुरक्षा का पूर्ण इन्तज़ाम किया जाये व उनके संक्रमित होने की स्थिति में उचित इलाज की ज़िम्मेदारी विभाग द्वारा उठायी जाये।

• समेकित बाल विकास परियोजना में ग़ैर-सरकारी संस्थाओं (एनजीओ) की घुसपैठ और हस्तक्षेप पर तत्काल पाबन्दी लगायी जाये।

• सभी आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं व सहायिकाओं को सरकारी कर्मचारी का दर्जा दिया जाये, हमें नियमित किया जाये व श्रम क़ानूनों के अन्तर्गत लाया जाये ताकि हमें रोज़गार की पक्की गारण्टी मिले।

• नयी शिक्षा नीति – 2020 वापस ली जाये व 'समेकित बाल विकास परियोजना' (आई.सी.डी.एस.) में किसी भी प्रकार के निजीकरण पर रोक लगायी जाये।

• सभी आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं व सहायिकाओं को ई.एस.आई., पी.एफ़. व पेंशन जैसी सुविधाएँ मुहैया करायी जायें व सभी आँगनवाड़ी महिलाकर्मियों के लिए सामाजिक सुरक्षा कार्ड जारी किये जायें।

• आई.सी.डी.एस. योजना में रिक्त पदों पर तत्काल भर्ती की जाये। सुपरवाइज़र पद पर पदोन्नति (प्रमोशन) आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं में से ही की जाये और योग्य आँगनवाड़ी सहायिकाओं का 'प्रमोशन' कार्यकर्ताओं के तौर पर किया जाये। इस प्रक्रिया को पूरी तरह 'पारदर्शी' बनाया जाये।

• जिन आँगनवाड़ीकर्मियों को 'पैनल' या 'लीव' पर रखा गया है, उन्हें तत्काल पारदर्शिता के साथ नियमित किया जाये। 2021 में नियमित की गयीं पैनल वर्कर्स के लेटर तुरन्त जारी किये जायें।

• आँगनवाड़ी का बजट बढ़ाया जाये व आँगनवाड़ी केन्द्रों में सूखे खाने को ही नियमित किया जाये।

• आबादी के अनुसार नये केन्द्र खोले जायें व 'अडिशनल चार्ज' का सिस्टम ख़त्म किया जाये।

• आँगनवाड़ी वर्करों की बन्द की गयी विधवा पेंशन पुनः बहाल की जाये।

• फ़ोन और इण्टरनेट बिल का ख़र्च सरकार वहन करे और इसका भुगतान नियमित किया जाये।

• दिल्ली एवं महिला बाल विकास विभाग द्वारा बीते 3 दिसम्बर को आँगनवाड़ीकर्मियों पर दण्डात्मक कार्रवाई की मंशा से जारी निर्देश को तत्काल वापस लिया जाये।

• डायरेक्ट बेनिफ़िट ट्रांसफ़र की स्कीम को रद्द किया जाये।

• पोषण ट्रैकर ऐप बन्द किया जाये।

मेहनतकशों पर कोरोना की तीसरी लहर की मार

भारत

कोरोना की तीसरी लहर की शुरुआत हो चुकी है। देश के कई राज्यों में कोरोना केसों की संख्या कम हो रही है और कई राज्यों में इसका अधिकतम उभार आना अभी बाक़ी है। दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता जैसे शहरों में केस अब कम हो रहे हैं। वहीं कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, बेंगलुरु में अभी भी फैलना जारी है। 23 जनवरी तक पूरे देश मे 3,06,064 कोरोना केस आ चुके हैं और प्रतिदिन औसतन 500-600 मौतें हो रही हैं। इस बार पिछले वर्ष की तरह मौतें नहीं हो रहीं, पर इसके बावजूद यह बड़े पैमाने पर फैल रहा है। कोरोना का नया वेरियेण्ट ओमिक्रॉन उतना घातक नहीं है। यह फैलता ज़्यादा तेज़ है, लेकिन इसके कारण मृत्यु दर अभी काफ़ी कम ही है। ओमिक्रॉन फेफड़ों को भी प्रभावित नहीं कर रहा है। इसके दो अन्य कारण भी हैं : पहला, एक अच्छी-ख़ासी आबादी का वैक्सीनेशन होना और दूसरा बड़े पैमाने पर कोरोना वायरस के प्रति प्रतिरोधक क्षमता का विकास होना। लेकिन वैज्ञानिकों ने अभी इस सम्भावना से इन्कार नहीं किया है कि भविष्य में कोई नया वेरियेण्ट आ सकता है। जो भी हो, तीसरी लहर उपरोक्त कारणों से बेहद कम घातक है। लेकिन इसके बावजूद कोरोना संक्रमण से प्रभावित होने वाली आबादी में दूरगामी स्वास्थ्य प्रभाव देखे जा रहे हैं। साथ ही, सारे रोगी ओमिक्रॉन के ही नहीं है, बल्कि उनमें एक तादाद डेल्टा वेरियेण्ट के रोगियों की भी है, जिसके कारण दूसरी भयंकर घातक लहर आयी थी। एक युग में मौसमी फ़्लू भी कोरोना वायरस जितना ही घातक था। लेकिन मनुष्यों में प्रतिरोधक क्षमता के विकास और बड़े पैमाने पर वैक्सीनेशन के साथ यह एक मामूली चीज़ बनकर रह गया। भविष्य में कोरोना वायरस के साथ भी ऐसा ही होगा, इसमें कोई दो राय नहीं है।

तीसरी लहर के दौरान भी पिछले दो वर्षों की तरह ही केन्द्र से लेकर राज्य सरकारों ने मज़दूरों को अपने हाल पर छोड़ दिया। ज़्यादातर राज्यों में नाइट कर्फ़्यू से लेकर आंशिक लॉकडाउन लगा दिया गया है। यह आंशिक लॉकडाउन आनन-फ़ानन में बिना किसी योजना के लगाये गये। इसके कारण आम मेहनतकशों के सामने फिर रोज़ी-रोटी का संकट पैदा हो गया है। ओमिक्रॉन के कम घातक होने के मद्देनज़र अव्वलन तो इतनी पाबन्दियों की कोई ज़रूरत नहीं थी और दरकार सिर्फ़ इस बात की थी कि वैक्सीनेशन को और बड़े पैमाने पर किया जाये और मास्क को अनिवार्य बनाये रखा जाये। लेकिन इसके बावजूद पिछली लहर में हुई छीछालेदर से शासक वर्ग और उसकी सरकारें डरी हुई थीं और ये पाबन्दियाँ लगा रही थीं। पिछली बार भी लॉकडाउन व तमाम पाबन्दियाँ मेहनतकश आबादी के भोजन आदि का इन्तज़ाम किये बिना लगायी गयी थीं और बिना किसी तैयारी के उन्हें जनता पर थोपा गया था और इस बार भी नाइट कर्फ़्यू और सप्ताहान्त की बन्दी को मेहनतकश आबादी के हितों की कोई परवाह किये बिना ही थोप दिया गया।

देश की जनता को एक तरफ़ कोरोना महामारी का डर है और दूसरी तरफ़ सरकार द्वारा फिर बिना किसी तैयारी के लगाये गये आंशिक लॉकडाउन का भी डर है जिसकी वजह से उनका रोज़गार खतरे में आ जाता है। इसके कारण पहले से ही मन्दी के शिकार कई कामकाज ठप्प पड़ गये हैं। दुकानों पर काम करने वालों से लेकर, सिलाई मज़दूर, फ़ैक्टरी मज़दूर, दिहाड़ी मज़दूर, घरेलू कामगार, रिक्शा-ठेले चलाने वाले व होटल पर काम करने वाले मज़दूरों के काम आंशिक लॉकडाउन के कारण रुके पड़े हैं। देशभर में मज़दूरों के लिए रोज़गार का संकट और बढ़ गया है।

पिछले कई वर्षों से बेरोज़गारी में लगातार वृद्धि हो रही है और कोरोना ने इसे और बढ़ा दिया है। दिसम्बर में बेरोज़गारी दर 7.9 प्रतिशत रही जो कि नवम्बर से अधिक है। तीसरी लहर आने के बाद हालात और बुरे हुए हैं। आंशिक लॉकडाउन और बढ़ रहे कोरोना केसों ने एक बार फिर मज़दूरों के पिछले दो वर्षों के बुरे अनुभवों की याद ताज़ा कर दी है, जब उन्हें हज़ारों किलोमीटर पैदल चलना पड़ा था और भूख बीमारी से मरना पड़ा था। इस बार भी न तो किसी सरकार द्वारा राशन दिया जा रहा है और न ही किसी प्रकार की आर्थिक सुरक्षा दी जा रही है। कई जगहों से फ़ैक्टरी मज़दूरों को काम से निकाले जाने की ख़बरें आ रही हैं। फ़ैक्टरी मालिकों के प्रति भी सरकारें पूरी वफ़ादारी दिखा रही हैं, इसी कारण मालिकों द्वारा मज़दूरों को इस दौरान का वेतन नहीं दिया जा रहा और श्रम क़ानूनों को तो वैसे भी रद्दी के ढेर में फेंका जा चुका है। कई आँकड़े बताते हैं कि कोरोना काल में मज़दूरों के ऊपर दो से तीन गुना क़र्ज़ बढ़ा है। साथ ही मासिक आय कम हुई है।

दूसरी ओर, चुनावों में सारी पार्टियों के नेता-मंत्री व्यस्त हैं। भाजपा से लेकर कांग्रेस, आप, सपा, बसपा और तमाम पार्टियों के लिए ज़रूरी मुद्दा मेहनतकश जनता की जीविका और स्वास्थ्य नहीं है, बल्कि अन्य ग़ैर-मुद्दे हैं। भाजपा पूरी तरह से साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण में लगी हुई है क्योंकि देश और प्रदेशों के स्तर पर उसकी सरकारें पूरी तरह से फेल हैं। देश में इस दौरान मेहनतकशों की समस्याएँ बढ़ रही हैं, पर सरकारें इस पर ध्यान देने के बजाय साम-दाम-दण्ड-भेद लगाकर किसी भी हालत में चुनाव जीतने में लगी हैं। इसी के मद्देनज़र चुनाव जीतने के लिए फ़ासिस्ट योगी सरकार केन्द्र सरकार द्वारा बनाये जा रहे ई-श्रम कार्ड में 1000 रुपये भेज रही है। यह चुनाव जीतने के हथकण्डों से अधिक कुछ नहीं है। योगी सरकार से पूछा जाना चाहिए कि हज़ार रुपये में आज के समय में घर का ख़र्च कैसे चलेगा। देखा जाये तो केन्द्र सरकार ई-श्रम कार्ड पूरे देश के असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों का बना रही है (जिसे बनाने के लिए इनके दलाल 150-200 रुपये ले रहे हैं) पर इससे इस कोरोना के समय में कोई सुविधा नहीं हो रही।

इस कोरोना काल और अनियोजित आंशिक लॉकडाउन से एक बार फिर मेहनतकशों के सामने बीमारी के साथ-साथ भुखमरी, बेरोज़गारी का संकट पैदा हो गया है। ऐसे में सरकारों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि देशभर में मज़दूरों-मेहनतकशों को इस दौरान भोजन, दवा-इलाज व अन्य किसी भी प्रकार की समस्याएँ न आयें।

हम केन्द्र व राज्य सरकारों से यह माँग करते हैं कि –

1) सार्वभौमिक राशन वितरण प्रणाली लागू करो!

2) सार्वभौमिक और निःशुल्क चिकित्सा व्यवस्था लागू करो!

3) सभी मूलभूत वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति की सार्वभौमिक सार्वजनिक व्यवस्था करो!

4) राज्य सरकारें यह आदेश जारी करें कि किसी भी कम्पनी, फ़ैक्टरी में मालिक द्वारा किसी भी सप्ताह का वेतन नहीं काटा जायेगा। साथ ही, लॉकडाउन के दौरान (पूर्ण या आंशिक) किसी भी व्यक्ति को काम से नहीं निकाला जायेगा।

5) सभी मज़दूर बस्तियों और इलाक़ों को नियमित तौर पर सैनिटाइज़ किया जाये व हर व्यक्ति को अच्छी गुणवत्ता वाला मास्क निःशुल्क उपलब्ध कराया जाये।

6) किरायेदार मज़दूर आबादी के इस माह के किराया माफ़ी के लिए मालिकों को बाध्य किया जाये (जहाँ ज़रूरत हो वहाँ के किराये का भुगतान सरकार करे) ताकि प्रवासी मज़दूर अपने गाँव लौटने को मजबूर न हों।

7) सरकार सुनिश्चित करे कि सभी मज़दूरों को अब तक किये गये काम का भुगतान (वेतन) हो।

8) लॉकडाउन के दौरान मज़दूर आबादी को आ रही समस्याओं के समाधान के लिए एक मज़दूर हेल्पलाइन फ़ोन नम्बर तत्काल चालू करना चाहिए।

9) अन्य बीमारियों के मरीज़ों के इलाज के लिए पर्याप्त व्यवस्था की जाये।

10) तथाकथित 'स्वरोज़गार प्राप्त' अनौपचारिक मज़दूरों जैसे ठेला चालक, रिक्शा चालक, रेहड़ी-खोमचे वालों, आदि के लिए 15,000 रुपये प्रति माह नक़द गुज़ारे भत्ते की व्यवस्था करो, उनकी नियमित व निःशुल्क कोरोना जाँच की व्यवस्था करो, उन्हें आवश्यक सुरक्षा प्रदान करो!

11) घर जाने वाले प्रवासी मज़दूरों के लिए पूर्ण सुरक्षा के साथ निःशुल्क परिवहन की व्यवस्था करो!

12) स्वास्थ्य सेवा समेत सभी मूलभूत सेवाओं व वस्तुओं के उत्पादन, जैसे परिवहन, बिजली उत्पादन व वितरण, आदि में लगे मज़दूरों व कर्मचारियों और साथ ही आम पुलिसकर्मियों को सुरक्षा के सभी आवश्यक उपकरण प्रदान करो, उनकी नियमित कोरोना जाँच व निःशुल्क इलाज की व्यवस्था की जाये!

हरिद्वार धर्म संसद में खुलेआम जनसंहार का आह्वान

विधानसभा चुनाव के पहले साम्प्रदायिक उन्माद फैलाने की बेशर्म कोशिश में जुटे संघी

केशव आनन्द

पिछले 17 से 19 दिसम्बर तक हरिद्वार में आयोजित "धर्म संसद" के मंच से हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्टों द्वारा खुलेआम मुसलमानों के ख़िलाफ़ भड़काऊ भाषण दिये गये। इन भाषणों में सीधे-सीधे मुसलमानों का क़त्ल कर देने की बात कही गयी। इन भाषणों को देने वाले हिन्दुत्ववादी कट्टरपन्थी संगठन विश्व हिन्दू परिषद्, आरएसएस और भाजपा के नेताओं के साथ-साथ बड़े-बड़े धर्मगुरु थे, जिनके भक्तों की संख्या लाखों में है। भड़काऊ भाषण देने वालों में मुख्य रूप से हिन्दू महासभा की महामंत्री अन्नपूर्णा माँ, धर्मदास महराज आनन्द स्वरूप महराज, सागर सिन्धुराज महराज जैसे लोग थे। भाजपा नेता अश्विनी उपाध्याय भी इस तथाकथित धर्मसंसद में मौजूद था और उसने यति नरसिंहानन्द को "भगवा संविधान" भेंट किया। इतना ही नहीं, एक धर्मगुरु ने मंच पर यह दावा किया कि उसने 10 मुसलमानों को एससी/एसटी क़ानून में फ़र्ज़ी तरीक़े से फँसाया है। ज़ाहिर है, ऐसे भाषणों से इन धर्मगुरुओं की भक्त मण्डली में से एक बड़ी आबादी प्रभावित होती है। और यही लोग आगे चलकर दंगों में मासूम बच्चों से लेकर बूढ़ों तक का बेरहमी से क़त्ल कर देते हैं। गुजरात, मुज़फ़्फ़रनगर, दिल्ली और न जाने कितने ही दंगे इसके जीते जागते उदाहरण हैं।

हम इन लोगों द्वारा दिये गये नफ़रती बयान के कुछ अंश यहाँ दे रहे हैं :

"कॉपी किताबों को रख दो और हाथ में शस्त्र उठा लो, हम सौ मिलकर इनके बीस लाख मार देंगे तो विजयी कहलायेंगे!" – अन्नपूर्णा माँ, निरंजिनी अखाड़े की महामण्डलेश्वर और हिन्दू महासभा की महामंत्री।

"मैं बार-बार दोहराता रहता हूँ कि पाँच हज़ार रुपये का मोबाइल रखो लेकिन एक लाख रुपये का हथियार ख़रीदो। तुम्हारे पास कम से कम लाठी और तलवारें तो होनी ही चाहिए।" – सागर सिंधुराज महाराज

इस घटना के बाद कई जगहों पर राजनीतिक कार्यकर्ताओं और इन्साफ़पसन्द नागरिकों द्वारा इसके ख़िलाफ़ विरोध प्रदर्शन आयोजित किये गये। कई राजनीतिक कार्यकर्ताओं और बुद्धिजीवियों ने सरकार को धर्म संसद के आयोजन के ख़िलाफ़ पत्र भी लिखे। इसके बावजूद लम्बे समय तक पुलिस और प्रशासन ख़ामोश बैठे रहे और आरएसएस की नफ़रती विचारधारा के वाहक इन धर्मगुरुओं पर किसी भी तरह की कार्रवाई नहीं की। एक फ़ेसबुक पोस्ट पर देशद्रोह का मुक़दमा लगा देने वाली पुलिस को इन भड़काऊ भाषणों में कोई देशद्रोह नज़र नहीं आया।

यह मामला जब जनता के बीच सोशल मीडिया के ज़रिए वायरल हुआ तब सुप्रीम कोर्ट ने पुलिस को इस मामले पर जाँच के आदेश दिये। जाँच के नाम पर अभी तक केवल दो लोगों की गिरफ़्तारी हुई है, और उन पर भी कोई ठोस कार्रवाई नहीं की गयी है। यह उस राज्य की बात है, जहाँ संघियों की मात्र झूठी ज़ुबानी शिकायतों पर लोगों को बिना किसी साक्ष्य के गिरफ़्तार कर लिया जाता रहा है। इस पूरे प्रकरण में पुलिस और प्रशासन के भगवाकरण को साफ़ तौर पर देखा जा सकता है। संघ ने एक लम्बे समय में राज्यसत्ता के अंग-उपांग में अपनी इस नफ़रती विचारधारा को पहुँचाया है। पुलिस-प्रशासन और न्यायपालिका की इन दहशतगर्दियों के प्रति पक्षधरता इसी की अभिव्यक्ति है। आज जो लोग भाजपा को चुनावी शिकस्त देकर फ़ासीवाद को हराने के सपने देख रहे हैं, वे आज भी किसी मुग़ालते में जी रहे हैं।

आरएसएस के हिन्दू राष्ट्र के नशे में धुत्त भीड़ यह समझ रही है कि मुसलमानों का क़त्लेआम कर एक हिन्दू राष्ट्र का निर्माण किया जायेगा, जहाँ सारी दुःख तकलीफ़ें ख़त्म हो जायेंगी। लेकिन वह इस बात को नहीं समझ रही है कि धर्म के नाम पर यह अफ़ीम जनता को बाँटने की साज़िश है, ताकि बढ़ती महँगाई, बेरोज़गारी, भुखमरी, ख़राब स्वास्थ्य व शिक्षा व्यवस्था पर लोगों का ध्यान न जाये। बड़ी पूँजी की सेवा करने के लिए इस अफ़ीम का इस्तेमाल इतिहास में हिटलर जैसे फ़ासीवादी नेता ने भी किया था।

आज आरएसएस और भाजपा जनता के बीच मौजूद बदहाली की वजह से उबल रहे ग़ुस्से का इस्तेमाल अपने नफ़रती मंसूबों को पूरा करने में लगी हैं। जनता से किये गये अपने किसी भी चुनावी वायदे को पूरा करने में नाकाम मोदी-योगी सरकार और संघ गिरोह अब पूरी नंगई और बेशर्मी के साथ फिर से धार्मिक उन्माद फैलाने की कोशिश कर रहे हैं, ताकि आने वाले चुनाव में वोटों की फ़सल काटी जा सके।

लेकिन इतिहास में हर बार जनता ने इन फ़ासिस्टों को धूल चटायी है। और आज इन फ़ासीवादी ताक़तों का जवाब हमें अपनी एकजुटता के दम पर देना होगा। और साथ ही इस मुग़ालते से भी बाहर आना होगा कि इन फ़ासिस्टों को केवल चुनावी राजनीति के ज़रिए हराया जा सकता है। हमें गली-गली, मोहल्लों-मोहल्लों से इन्हें खदेड़ना होगा और इनके नफ़रती मंसूबों को नाकाम करना होगा।

कोरोना से हुई मौतों के आँकड़े छिपाने में जुटी मोदी सरकार के झूठों की खुलती पोल

मोदी सरकार के हिसाब से भारत में 11 जनवरी 2022 तक कोरोना के 3.59 करोड़ मामले और 4.84 लाख मौतें दर्ज की गयी हैं। लेकिन कई नये अध्ययनों और रिपोर्टों ने इस झूठ की कलई खोलकर रख दी गयी है।

विश्व स्तर की प्रतिष्ठित पत्रिका 'साइंस' में 6 जनवरी को 'भारत में कोविड से मौतें : राष्ट्रीय सर्वे का डेटा और अस्पतालों में हुई मौतें' शीर्षक से प्रकाशित इस अध्ययन के मुताबिक़ कोरोना के दौरान 32 लाख लोगों की मौत हुई, जो सरकारी रिकॉर्ड में दर्ज मौतों से 7 गुना ज़्यादा है। एक अन्य प्रतिठित अन्तरराष्ट्रीय पत्रिका 'नेचर' के अनुसार भारत में कोविड से क़रीब 50 लाख, यानी सरकारी आँकड़े से दस गुना ज़्यादा मौतें हो चुकी हैं।

'साइंस' पत्रिका के अध्ययन के लिए सभी राज्यों के 1.40 लाख़ लोगों से टेलीफ़ोन पर बातचीत करके महामारी को ट्रैक किया गया है, इसके अतिरिक्त सरकारी अस्पतालों से मौत के आँकड़े और 10 राज्यों के सिविल रजिस्ट्रेशन सिस्टम में दर्ज मृत्यु रजिस्ट्रेशन के आँकड़ों को आधार बनाया गया है।

इस अध्ययन से कोरोना के बारे में तीन बड़ी बातें सामने आयी हैं –

सर्वे एजेंसी 'CVoter' ने भारत के 1.40 लाख लोगों को कॉल किया और कुछ सवाल पूछे। क्या उनके घर में मौत हुई है? यदि हाँ तो मौत कब हुई है और मौत कोविड की वजह से थी या किसी अन्य कारण से?

सभी जवाबों को एक साथ एकत्रित कर विश्लेषण किया गया, जिससे पता चला कि जून 2020 से जुलाई 2021 तक 29% मौतें कोरोना की वजह से हुई। अगर संख्या में बात की जाये तो यह आँकड़ा 32 लाख तक पहुँच जाता है। इनमें 27 लाख मौतें तो सिर्फ़ अप्रैल 2021 से जुलाई 2021 के दौरान हुई हैं।

इसी तरह जब 2 लाख अस्पतालों में कोरोना महामारी से पहले और कोरोना की दूसरी लहर के बाद के मौत के आँकड़े की तुलना की गयी तो इसमें 27% की बढ़ोत्तरी देखी गयी। इससे अन्दाज़ा लगाया गया कि ये बढ़ी हुई मौतें कोरोना की वजह से हुई हैं। इसी तरह सरकार के सिविल रजिस्ट्रेशन डेटा को मॉनिटर किया गया, जिसमें 10 राज्यों में कोरोना महामारी के दौरान मौतों के रजिस्ट्रेशन में 26% की बढोत्तरी दर्ज की गयी। इन सभी आँकड़ों का विश्लेषण करके यह पाया गया कि सितम्बर 2021 तक भारत मे कोरोना से हुई मौतों का आँकड़ा सरकारी रिकॉर्ड में दर्ज आँकड़ों से 6 से 7 गुना ज़्यादा है।

एक अन्य रिपोर्ट में पाया गया कि सुप्रीम कोर्ट की फटकार के बाद जब मोदी सरकार ने कोविड से मरने वालों को मुआवज़ा देने का आदेश दिया, तो लगभग सभी राज्यों में मृतकों की सरकारी संख्या से कई गुना ज़्यादा लोगों ने मुआवज़े के लिए आवेदन किया। उत्तर प्रदेश और गुजरात सहित कई राज्य सरकारें अपनी घोषित संख्या से कहीं ज़्यादा कोविड मौतों के लिए मुआवज़ा दे भी चुकी हैं। हालाँकि अब भी यह संख्या आवेदन करने वालों से बहुत कम है। इसका मुख्य कारण यह है कि सरकारों के दबाव में अस्पताल ने बहुत से लोगों को कोविड से मृत्यु होने का प्रमाणपत्र ही नहीं दिया।

प्रोफ़ेसर प्रभात झा ने कहा है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन को भारत के कोविड-19 की मौतों के आँकड़ों पर भरोसा नहीं है और इसलिए, जब विश्व स्वास्थ्य संगठन ने वैश्विक मौतों का अपना पहला अनुमान लगाया, तो इसमें भारत की मौतों का आँकड़ा शामिल ही नहीं था। भारत के इन आँकड़ों से विश्वभर में कोरोना से हुई मौतों की संख्या में काफ़ी बदलाव होगा, जो अभी लगभग 50 लाख है।

फ़ासीवादी मोदी सरकार ने हर क़दम पर आपराधिक लापरवाही और बदइन्तज़ामी से लाखों लोगों को मौत के मुँह में धकेला और करोड़ों लोगों को बीमारी, बेरोज़गारी और ग़रीबी में धकेल दिया।

पिछले वर्ष रामराज्य वाले उत्तर प्रदेश में हर गली चौराहे पर मौत का ताण्डव दिखाई और सुनाई दे रहा था। हर मोहल्ले में शमशान-सा मातम था। हर घर में एक अफरा-तफरी का माहौल था। लोग अस्पताल में ऑक्सीजन, प्लाज़्मा, दवाइयों के लिए एड़ी चोटी एक कर रहे थे, लेकिन निराशा हाथ लग रही थी। वे अपने परिजनों को अपने सामने तड़प-तड़पकर दम तोड़ते देख रहे थे। जिस फ़ासीवादी सरकार ने लोगों को नोटबन्दी की लाइन में खड़ा कराया था उसी ने लोगों को मुर्दाघरों, मरघटों की क़तार में ला खड़ा कर दिया। काला बाज़ारी का धन्धा अपने उफ़ान पर था। अपने आक़ाओं से "आपदा को अवसर" में बदलने का गुरुमंत्र सीखे नरभक्षी दवा से लेकर अन्तिम संस्कार तक में लोगों को लूट रहे थे। राजधानी लखनऊ से लेकर वाराणसी, कानपुर, इलाहाबाद, ग़ाज़ियाबाद, मेरठ, नोएडा तक हर तरफ़ लाशों से उठती लपटें बेहद ही भयावह मंज़र पेश कर रही हैं।

अब वह कोरोना से हुई मौतों की संख्या को भी छुपा रही है और वह किसी भी सूरत में इन आँकड़ों को बाहर नहीं आने देना चाहती है। इन आँकड़ों की सच्चाई को कोरोना की दूसरी लहर का वह मंज़र भी साफ़ करता है, जब लोग ऑक्सीजन, दवाई व अस्पताल में बेड के लिए इधर-उधर भटक रहे थे और सभी नेता अपने बिलों में छिपे हुए थे। जनता की मेहनत पर पलने वाले पूँजीपति अपने प्राइवेट प्लेन से देश छोड़कर भाग गये थे, और भारत की आम अवाम अस्पतालों के बाहर अपने परिजनों की लाशें उठा रही थी और उन्हें जलाने, दफ़नाने या नदियों में बहाने की जगहें ढूँढ़ रही थी।

ये मौतें सरकार की लापरवाही और देश में स्वास्थ्य व्यवस्था की बदतर हालत की वजह से हुई हैं। जब देशभर में कोरोना के मामलों में इज़ाफ़ा हो रहा था, तब कुम्भ मेले से लेकर चुनाव कराये जा रहे थे। एक आँकड़ा यह भी बताता है कि वर्ष 2019 के मुक़ाबले 2020 में स्वास्थ्य पर होने वाले ख़र्च में कमी आयी थी। पीएम केयर फ़ण्ड में बटोरे गये हज़ारों करोड़ रुपये का कोई ब्योरा आज तक जारी नहीं किया गया। लोगों की जान से खिलवाड़ करने के बाद अब यह सरकार उस नाकामी को ढँकने के लिए जनता को जाति-धर्म में बाँटने में लगी हुई है।

दूसरी ओर, कुछ कोविडियट्स अब भी अपने कुतर्कों से मोदी सरकार की लापरवाही और और उनकी इस साज़िश को सही ठहराने का ही काम कर रहे हैं। और अपनी मूर्खता के ज़रिए अवाम को गुमराह भी कर रहे हैं। अभी भी कई "मार्क्सवादी" कोविडियट्स हैं, जो दूसरी लहर के दौरान हुई इतनी मौतों को देखकर भी इसे सामान्य फ़्लू बता रहे हैं। आँकड़ों के सामने आने के बाद भी ये बड़ी बेशर्मी से चुप्पी साधकर बैठ जाते हैं। जब पूरे देश में नदियों के किनारे लाशों के ढेर पड़े थे, तब भी ये कोविडियट्स सरकार को सही माँगों पर घेरने के बजाय कोरोना को ही ड्रामा बता रहे थे। इसे सिर्फ़ मूर्खता कहना ठीक नहीं होगा। असल में लाखों लोग जो कोरोना और सरकार की लापरवाही से मरे हैं, यह उनका मज़ाक़ उड़ाना है।

– बिगुल डेस्क

गंगासागर मेले में फिर से कोरोना फैलाने की इजाज़त

भारत

पिछले वर्ष जब हज़ारों लोग कोरोना और सरकार की लापरवाही के कारण मर रहे थे, तब भाजपा सरकार ने कुम्भ मेले का आयोजन किया था, जहाँ लाखों की तादाद में भीड़ इकट्ठा हुई थी और यह भी उस दौरान कोरोना के फैलने का एक कारण था। इसी राह पर चलते हुए पश्चिम बंगाल की ममता सरकार ने गंगासागर मेले का आयोजन कराया। यह मेला हर वर्ष मकर संक्रान्ति के अवसर पर 8-16 जनवरी के बीच लगता है। ज्ञात हो कि इस मेले में लाखों की संख्या में पूरे देश से लोग आते हैं। इस समय यह बीमारी फैलने का एक बड़ा स्थल बन सकता था। इस दौरान पश्चिम बंगाल में ही रोज़ 18,000 केस आ रहे थे। यही समय था जब पूरे देश में कोरोना के केसों में लगातार इज़ाफ़ा हो रहा था। इसके बावजूद इन सब की अनदेखी करते हुए ममता सरकार ने इस मेले का आयोजन किया। यह साफ़ दर्शाता है कि ममता सरकार भी धर्म के नाम पर राजनीति करने में किसी सरकार से पीछे नहीं है।

किसी बुर्जुआ सेक्युलर लोकतांत्रिक राज्य को न तो कोई धार्मिक आयोजन करना चाहिए और न ही उसे प्रोत्साहित करना चाहिए। राज्य की ज़िम्मेदारी केवल प्रशासनिक व्यवस्था सँभालना है। लेकिन यहाँ तो सरकारें धार्मिक मेलों के आयोजक की भूमिका में होती हैं। साथ ही इन धार्मिक आयोजनों के बहाने हिन्दू धर्मावलम्बियों के इस जमघट में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद्, अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद, संस्कार भारती और वनवासी कल्याण आश्रम आदि कैम्प लगाकर, हिन्दू प्रतीकों का इस्तेमाल करके, नुक्कड़ नाटक, और विभिन्न माध्यमों से अपने हिन्दुत्ववादी साम्प्रदायिक एजेण्डे का खुलकर बेरोकटोक प्रचार करते हैं। बढ़ती बेरोज़गारी, छात्रों-कर्मचारियों, मज़दूरों-किसानों के आन्दोलनों से बेनक़ाब होती भाजपा से लेकर ममता सरकार के पास वोट की फ़सल को सींचने के लिए कुम्भ, राम मन्दिर, गंगा सागर हिन्दू-मुस्लिम के नाम पर बँटवारे को और तीखा करने, राष्ट्रवाद, सेना और युद्धोन्माद के अलावा कोई रास्ता नहीं बचा है। यही कारण है कि ये सरकारें करोड़ों इन मेलों की तैयारी में लगा देती हैं। जबकि आज कोरोना काल में इसे जनता के हालात को बेहतर करने में प्रयोग करना चाहिए। पिछले वर्ष जब कोरोना अपने चरम पर था तब कुम्भ मेले के लिये बाक़ायदा स्पेशल ट्रेनें चलायी गयीं। वहीं ये ट्रेनें सरकार ने उस समय नहीं चलायीं जब करोड़ों मज़दूर अपने घरों को लौटने के लिए हज़ारों किलोमीटर पैदल चलने के लिए मजबूर थे।

इस मुद्दे पर मीडिया भी चुप्पी साधे है और यह कोई आश्चर्य वाली बात नहीं है। सरकार की लापरवाही लोग न देख पायें इसलिए पहली लहर में बढ़ते केसों के समय इन्होंने मरकज़ में आये मुसलमानों को कोरोना फैलाने वाला बताया और जब बढ़ते केसों में कुम्भ व गंगासागर मेले का आयोजन किया जाता है तब गोदी मीडिया इसकी हिमायती बन जाती है। यह इनके दोगलेपन की पुष्टि करता है।

कोरोना के समय जब सरकारों को ख़ास तौर पर जनता को इलाज, राशन, रोज़गार, आर्थिक सुरक्षा मुहैया कराने को प्राथमिकता देनी चाहिए, पर इन सब पर सभी सरकारों को साँप सूंघ जाता है चाहे वो कांग्रेस हो, भाजपा, सपा, बसपा या टीएमसी। सभी सरकारें जनता को धर्म की अफ़ीम देने और उनके अधिकारों को छीनने के लिए हमेशा एकजुट रहती हैं।

बेरोज़गारी के भयंकर होते हालात और रेलवे के अभ्यर्थी छात्रों का आन्दोलन

वारुणी

बिहार और उत्तर प्रदेश समेत कई राज्यों में रेलवे के एन.टी.पी.सी. के अभ्यार्थी आन्दोलनरत हैं। ज्ञात हो 24 जनवरी को बिहार के पटना, आरा व दरभंगा ज़िले में हज़ारों छात्रों ने बड़े स्तर पर रेल रोको आन्दोलन किया। उसके बाद से यह आन्दोलन अन्य राज्यों में भी फैल गया! लेकिन चूँकि मुख्य रूप से बिहार और उत्तर प्रदेश के ही छात्रों ने एन.टी.पी.सी. का फ़ॉर्म भरा था, तो ख़ासकर इन राज्यों में छात्रों का आन्दोलन उग्र होता गया। 24 जनवरी को राजेन्द्र नगर टर्मिनल पर और आरा स्टेशन पर क़रीब 7 घण्टे तक छात्रों ने रेलवे को जाम कर दिया। उसके अगले ही दिन पटना में भिखना पहाड़ी, इसके अलावा जहानाबाद, गया, नवादा, नालन्दा, व अन्य कई ज़िलों में छात्रों ने हज़ारों की संख्या में प्रदर्शन किया। बिहार के अलावा उत्तर प्रदेश की इलाहाबाद, गोरखपुर, बनारस आदि जगहों पर भी छात्रों ने अपनी आवाज़ उठायी! इसमें कई जगहों पर आन्दोलन ने हिंसक रूप ले लिया। जहानाबाद में एक ट्रेन को भी आग लगा दी गयी! दूसरी तरफ़ प्रशासन व सरकार द्वारा इस आन्दोलन को रोकने के लिए छात्रों पर बर्बर तरीक़े से लाठीचार्ज किया गया व आँसू गैस के गोले दाग़े गये! कई जगह तो खुलेआम गोलियाँ चलायी गयीं! योगी सरकार के गुण्डा राज में तो यू.पी. पुलिस द्वारा छात्रों को लॉज में से घुसकर निकाला जा रहा था और बेरहमी से पीटा जा रहा था। कई छात्रों को सिर्फ़ शक के आधार पर हिरासत में ले लिया गया! इस आन्दोलन को दबाने के लिए सरकार ने कोई कोर कसर नहीं छोड़ी! रेलवे बोर्ड ने आन्दोलन में शामिल छात्रों के सम्बन्ध में यह प्रपत्र जारी किया कि जो भी आन्दोलन करते हुए दोषी पाये जायेंगे, उनको ताउम्र रेलवे में नौकरी नहीं मिलेगी! कई कोचिंग संस्थानों के शिक्षकों पर प्राथमिकी दर्ज की गयी है व कई छात्रों को हिरासत में लिया गया है!

छात्रों का यह आन्दोलन उग्र होने का कारण था रेलवे के एन.टी.पी.सी. परीक्षा के परिणामों में बड़े स्तर पर धाँधली! लेकिन सिर्फ़ यहीं तक बात सीमित नहीं है! छात्रों के अन्दर यह रोष क्यों बढ़ता गया इसकी जड़ में सिर्फ़ एन.टी.पी.सी. के पेपर में धाँधली नहीं है। ज्ञात हो कि रेलवे में 2019 में ठीक लोकसभा चुनाव के वक़्त एन.टी.पी.सी. के माध्यम से 35,308 पद के लिए और रेलवे के ही ग्रुप 'डी' के लिए लगभग एक लाख तीन हज़ार पदों की रिक्ति निकाली गयी थी। फ़रवरी-मार्च में छात्रों ने इसका फ़ॉर्म भरा। अप्रैल-मई में नयी सरकार बन गयी। जुलाई तक परीक्षा लेने की सम्भावित तारीख़ दी गयी थी लेकिन साल 2019 में परीक्षा नहीं ली गयी। 2019 में एन.टी.पी.सी. में निकली क़रीब 35 हज़ार पोस्ट की रिक्ति के लिए क़रीब 2.5 करोड़ छात्रों ने फ़ॉर्म भरे थे! रेलवे में जूनियर क्लर्क, ट्रेन सहायक, गार्ड, टाइम-कीपर से लेकर स्टेशन मास्टर तक की विभिन्न श्रेणियों में एन.टी.पी.सी. के तहत भर्ती होती है। इन विभिन्न श्रेणियों में नौकरी पाने के लिए दो स्तरीय परीक्षा देनी होती है, पहला सी.बी.टी-1 और दूसरा सी.बी.टी-2। एन.टी.पी.सी. ने पहले ही यह नोटिस निकाला था कि जितनी पोस्ट हैं, उससे 20 गुना ज़्यादा लोगो को सी.बी.टी-2 के लिए चुना जायेगा यानी कि क़रीब 7 लाख लोगों को! उसके बाद 2021 के अप्रैल माह में परीक्षा ली गयी और जब परिणाम निकले तब पता चला कि एक ही छात्र को 4-5 अलग पदों पर चुन लिया गया है जिससे कि प्रतीत तो ऐसा हो रहा है कि 7 लाख लोगों का रिज़ल्ट आया है लेकिन असल में रेलवे बोर्ड ने मात्र 10 गुना रिज़ल्ट दिया है! साफ़ है कि एक ही छात्र को अलग-अलग श्रेणियों में 4-5 पदों पर दोहराया गया है, ऐसे में जब वह छात्र सारे पदों में उत्तीर्ण हो जायेगा, तो रेलवे उसे उन पाँचों पोस्ट पर तो नौकरी नहीं देगा! इसका साफ़ मतलब है कि कई सारे पद ख़ाली रह जायेंगे! और कई छात्रों को सीट ख़ाली होते हुए भी नौकरी नहीं मिलेगी! छात्रों का इस बात को लेकर ग़ुस्सा जायज़ है! हालाँकि रेलवे द्वारा यह अधिसूचना जारी करना कि सी.बी.टी-1 में 20 गुना ज़्यादा रिज़ल्ट दिया जायेगा, यह भी सरकार का एक छलावा ही है ताकि छात्र इस भ्रम में जीते रहें कि सी.बी.टी.-1 पास करने का अर्थ है कि अगर अगली बार वो और कोशिश किये तो उन्हें देर-सवेर नौकरी मिल ही जायेगी! असल में 20 गुना ज़्यादा रिज़ल्ट निकालने से भी सभी उत्तीर्ण अभ्यार्थियों को नौकरी नहीं मिलती क्योंकि पदों की संख्या ही उतनी नहीं थी!

इस आन्दोलन के उठान का दूसरा कारण था रेलवे के ही ग्रुप 'डी' की परीक्षाएँ जो पहले एक ही स्तर की होती थीं, अब उनको अचानक दो स्तर में विभाजित कर दिया गया। 2019 में रेलवे के ग्रुप 'डी' में 3 लाख पदों पर रिक्ति निकालने की बात मोदी सरकार ने की थी लेकिन तीन साल बीत गये पर कोई परीक्षा की तारीख़ नहीं निकाली गयी। कोरोना के नाम पर सारी परीक्षाओं को स्थगित कर दिया गया। अब जबकि तीन साल बाद परीक्षा की तारीख़ें निकली तो एक नये प्रपत्र के साथ, जिसमें दो स्तर पर परीक्षा करवाने की बात की गयी थी। जो छात्र फ़ॉर्म भरकर एक परीक्षा की तैयारी में लगे थे अब उनको अचानक से दो स्तर पर परीक्षा देने की बात ग़लत लगी। साफ़ है यदि यह नोटिस फ़ॉर्म भरने से पहले निकाला गया होता तो छात्रों में इतना रोष नहीं होता। लेकिन दो स्तर पर परीक्षा करवाने का नोटिस सरकार तभी लायी जब सारे फ़ॉर्म भरे जा चुके थे। इससे ज़ाहिर होता है कि जितने पद ख़ाली थे, उससे कहीं ज़्यादा छात्रों ने फ़ॉर्म भरे थे और यदि पदों की संख्या से ज़्यादा छात्र कट ऑफ़ में नाम ले आते तो सरकार के लिए यह दिक़्क़ततलब बात होती! इसलिए इतनी संख्या में फ़ॉर्म जमा होता देख रेलवे बोर्ड ने दो स्तर पर परीक्षा लेने का तुग़लक़ी फ़रमान जारी कर दिया! लोकसभा चुनाव के वक़्त एन.टी.पी.सी. और ग्रुप 'डी' में निकली 'बम्पर' वेकेंसी को मोदी सरकार की उपलब्धि के रूप में अख़बारों में छापा गया था परन्तु दूसरी तरफ़ मोदी सरकार के ही अनियोजित लॉकडाउन के कारण लाखों लोगों के छिनते रोज़गार पर कोई मीडिया बात नहीं कर रही थी। इसी लॉकडाउन के दौरान बेरोज़गारी के भयंकर होते हालात का नतीजा था कि रेलवे के इन पदों के लिए बड़ी संख्या में नौजवानों ने आवेदन किया। बेरोज़गारी की हालत से परेशान छात्र रेलवे बोर्ड की नीति को कोस रहे हैं!

छात्रों का यह ग़ुस्सा निकलना लाज़िमी था। ज्ञात हो एन.टी.पी.सी. और रेलवे के ग्रुप 'डी' जैसे फ़ॉर्म निम्न-मध्य वर्ग या मेहनतकश वर्ग से आने वाली एक बड़ी आबादी ही भर्ती है। इनमें से ज़्यादातर पद पर फ़ील्ड वर्क का काम होता है और बहुत ज़्यादा योग्यता की माँग नहीं की जाती। कई पदों पर न्यूनतम योग्यता की शर्त 12वीं कक्षा पास होना है। इसलिए इनमें आवेदन करने वाले ज़्यादातर छात्र मज़दूर या निम्न-मध्य वर्ग की पृष्ठभूमि से आते हैं! इनमें से ज़्यादातर या तो 12वीं करके या फिर आई.टी.आई. या पॉलिटेक्निक करके प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी करने में लग जाते हैं! तैयारी में ये नौजवान अपनी पूरी उम्र खपा देते हैं लेकिन कइयों को सिर्फ़ सड़कों पर धक्के खाना ही नसीब होता है! कई छात्र निराश होकर आत्महत्या कर लेते हैं! कई ऐसे होते है जो थक हारकर कहीं किसी फ़ैक्टरी में कुशल या अर्ध कुशल मज़दूर की तरह खटते हैं! ऐसा पहली बार नहीं हुआ है कि किसी प्रतियोगी परीक्षा में धाँधली हुई हो! यह लगभग हर बार की दास्तान है! रिक्ति निकलने से लेकर फ़ॉर्म भरने, परीक्षा देने, परिणाम आने और नियुक्ति होने तक कभी 8 तो कभी-कभी 10 साल से ऊपर भी लग जाते हैं! एक तरफ़ भर्ती करने से लेकर नियुक्ति की प्रक्रिया में इतनी अनियमितता है तो दूसरी तरफ़ सरकारी नौकरियों में ही कटौती की जा रही है! सातवें वेतन आयोग के आँकड़ों के मुताबिक़ 1995 में केन्द्र सरकार के अलग-अलग विभागों में (सैन्य बलों को छोड़कर) कुल नौकरी करने वालों की संख्या 39 लाख 82 हज़ार थी, वह 2011 में घटकर 30 लाख 87 हज़ार पर आ गयी। एसएससी-सीजीएल के लिए 2012 की तुलना में 2020 में केवल 40 प्रतिशत भर्तियाँ बची हैं। आईबीएसपी-पीओ में 2012 की तुलना में लगभग 20 प्रतिशत भर्तियाँ बची हैं। फ़ासीवादी मोदी सरकार के कार्यकाल में सरकारी भर्तियों में तो और कमी आयी है। 2014-15 में देशभर में कुल 1,13,524 सरकारी भर्तियाँ हुईं तथा पब्लिक सेक्टर में कुल 16.91 लाख लोग कार्यरत थे, वह 2016-17 में घटकर एक लाख और 15.23 लाख पहुँच गयीं।

जो भी बचे खुचे पद हैं, उनमें भी अब ज़्यादातर लोगों को ठेके पर बहाल किया जा रहा है और स्थायी प्रकृति का काम होते हुए भी स्थायी नियुक्ति नहीं दी जा रही। सेण्टर फ़ॉर मॉनिटरिंग इण्डियन इकोनॉमी (सी.एम.आई.ई.) की रिपोर्ट के अनुसार 75 प्रतिशत से अधिक कार्यबल अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत है। दूसरी तरफ़ उदारीकरण-निजीकरण की मुहिम जो कि कांग्रेस के कार्यकाल से शुरू हुई थी उन्हीं नीतियों को बुलेट ट्रेन की रफ़्तार से आगे बढ़ाने का काम मोदी सरकार ने किया है। इन्हीं नीतियों के आने के बाद से युवाओं के लिए सरकारी नौकरियों के अवसर कम होने लगे। और जिस प्रकार मोदी सरकार एक-एक करके सरकारी नौकरियों में कटौती कर रही है और बचे-खुचे सरकारी विभागों को औने-पौने दामों में पूँजीपतियों को बेच रही है, इससे साफ़ है कि आने वाले दिनों में रोज़गार का यह संकट और गहराने वाला है। सरकारी और स्थायी नौकरियाँ कम होने वाली हैं और इसकी जगह ठेका, संविदा और पीस रेट लेने वाला है। मतलब साफ़ है कि अब काम की कोई गारण्टी नहीं होगी।

वैसे ही कोरोना काल की पहली लहर में अनियोजित लॉकडाउन के कारण लगभग 12 करोड़ नौजवानों को नौकरी से हाथ धोना पड़ा था। जिनकी नौकरी बची भी रही, उन्हें कम वेतन पर काम करने के लिए मजबूर किया गया। यह सिलसिला अभी तक चल ही रहा है! मोदी सरकार जो 'मेक इन इण्डिया', 'स्किल इण्डिया', 'स्टार्ट अप इण्डिया' जैसे जुमलों का ख़ूब गुब्बारा फुलाया करती थी, उसकी सच्चाई यह है कि देश का हर पाँचवा डिग्री होल्डर रोज़गार के लिए भटक रहा है। देश में ग्रेजुएट बेरोज़गारों की तादाद सवा करोड़ के ऊपर पहुँच चुकी है। अण्डर ग्रेजुएट नौजवानों में औसत बेरोज़गारी की दर 24.5 प्रतिशत पहुँच चुकी है। मतलब यह कि देश का हर चौथा डिग्रीधारी बेरोज़गार है। वहीं 21-24 साल के नौजवानों में यह स्थिति और भी गम्भीर है। इस आयु वर्ग का हर दूसरा नौजवान स्नातक की डिग्री लिये बेरोज़गार घूम रहा है। सी.एम.आई.ई. ने दावा किया है कि 2021 के अगस्त में देश में 15 लाख से अधिक लोगों ने अपनी नौकरी खो दी। इसी रिपोर्ट में यह बताया गया है कि 2021 के दिसम्बर में शहरी बेरोज़गारी दर बढ़कर 9.3 प्रतिशत हो गयी, जो पिछले महीने में 8.2 प्रतिशत थी, जबकि ग्रामीण बेरोज़गारी दर 6.4 प्रतिशत से बढ़ कर 7.3 प्रतिशत हो गयी।

हर बार की तरह इस बार भी संघी फ़ासीवादियों द्वारा नौजवानों को हिन्दू-मुस्लिम-गाय-पाकिस्तान-चीन आदि में उलझाने की कोशिश तो की गयी परन्तु वे नाकामयाब रहे। इस बार बड़े स्तर पर छात्रों का ग़ुस्सा सड़कों पर हुजूम की तरह बह निकला लेकिन इस आन्दोलन को जल्द ही शान्त करवाने के लिए सरकार ने एक जाँच कमेटी बैठाने की घोषणा कर दी। परन्तु हमें यह समझना होगा कि यह छात्रों को सिर्फ़ एक झुनझुना पकड़ा दिया गया है। इस कमेटी की रिपोर्ट कब आयेगी, कब संशोधित परिणाम जारी किये जायेंगे, इसका कोई भरोसा नहीं! आज सरकारी नौकरी में घटते अवसर, सरकारी पदों पर नियुक्ति में अनियमितता और प्रतियोगी परीक्षाओं में धाँधलियों का यह सिलसिला इसलिए जारी है क्योंकि छात्र-मज़दूर विरोधी यह फ़ासीवादी मोदी सरकार निजीकरण जैसी नीतियों को खुलेआम लागू कर रही है। इसलिए आज अपने विशिष्ट मुद्दों तक छात्रों के इस आन्दोलन को सीमित नहीं रहना चाहिए बल्कि इस आन्दोलन को आगे बढ़ाते हुए सरकार पर यह दबाव बनाना चाहिए कि वह निजीकरण और उदारीकरण की नीतियों पर रोक लगाये। जब तक हम इस माँग को नहीं उठायेंगे तब तक परीक्षाओं में धाँधली, सरकारी पदों में कटौती, नियुक्ति की प्रक्रिया में अनियमितता – यह सब बदस्तूर जारी रहेगा! उदारीकरण-निजीकरण की यह नीतियाँ इस पूँजीवादी व्यवस्था की ही देन हैं! और बुर्जुआ वर्ग की तमाम पार्टियाँ चाहे वह कोई भी पार्टी हो, सत्ता में आने पर इन्हीं नीतियों को आगे बढ़ायेंगे। इसलिए हमें इस भ्रम में भी नहीं जीना चाहिए कि यदि कोई और पार्टी की सरकार बनी तो शायद कुछ बदलाव हो। पूँजीवादी व्यवस्था की यही गति है। इस पूँजीवादी व्यवस्था में सभी को सम्मानजनक रोज़गार के अवसर मिल पाना नामुमकिन है।

पाँच राज्यों के विधानसभा चुनाव : मज़दूर वर्ग और आम जनता के सामने विकल्प क्या है?

(पेज 1 से आगे)

में जुट गया है। योगी, मोदी और शाह ने यहाँ विकास की लफ़्फ़ाज़ी का झुनझुना दूर फेंक दिया है और अपना पूरा ध्यान मन्दिर-मस्जिद और हिन्दू-मुसलमान पर केन्द्रित कर दिया है। हालिया दिनों में योगी आदित्यनाथ को साम्प्रदायिक नफ़रत का ज़हर उगलते हुए आसानी से देखा जा सकता है। सत्ता खो जाने के भय से इनकी बदहवासी और बेचैनी देखते ही बन रही है। संतों के भेस में नफ़रती भेड़ियों को खुली छूट दे दी गयी है और भाजपा के आईटी सेल से लेकर गोदी मीडिया तक धार्मिक नफ़रत के कारोबार में पूरा-पूरा योग दे रहे हैं। इस सबके बावजूद सत्ताच्युत हो जाने के डर के चलते योगी आदित्यनाथ की कँपकँपी दूर होती नहीं दिख रही है। असल में यूपी में भाजपा का मुक़ाबला सपा-रालोद गठबन्धन से नहीं बल्कि सीधे जनता से है। परिणाम चाहे जो भी हो लेकिन इतना साफ़ है कि सही राजनीतिक विकल्प की ग़ैर-मौजूदगी के बावजूद भी जनता सपा, रालोद और तमाम अवसरवादी गिरोहों को जिताने की बजाय भाजपा को हराने के लिए ख़ुद मैदान में खड़ी नज़र आ रही है। हालाँकि भाजपा को पूरे सरकारी तंत्र, चुनाव आयोग, साम्प्रदायिक गुण्डा गिरोह और अन्त में ईवीएम मशीन का साथ तो मिलेगा ही। इसके साथ ही बसपा भी अन्दर खाते किसे फ़ायदा पहुँचाने वाली है यह बात भी किसी से छुपी हुई नहीं होनी चाहिए।

पंजाब में पिछले पाँच साल से कांग्रेस की सरकार थी। शिक्षा, चिकित्सा, रोज़गार और जनता की अन्य बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करने में राज्य की कांग्रेस सरकार भी नाकाम ही साबित हुई है। यहाँ कांग्रेस की अन्दरूनी कलह ही ख़त्म होने का नाम नहीं ले रही है। कैप्टन-सिद्धू की कुत्ताघसीटी में कैप्टन को कांग्रेस से जुदा होना पड़ा। कैप्टन ने भी फट दूसरी पार्टी बनायी और झट भाजपा के साथ नत्थी हो गये। अब सिद्धू और चन्नी की नयी कुत्ताघसीटी चालू हो चुकी है। जट्टवाद का तुम्बा बना अकाली दल इस बार दलितों की राजनीति का दम भरने वाली बसपा के साथ चुनावी गठबन्धन में है। पंजाब में आम आदमी पार्टी भी ख़ूब हाथ-पैर मार रही है। भाजपा को पता है कि वह ख़ुद पंजाब में ज़्यादा कुछ नहीं कर पायेगी। यहाँ भाजपा का पूरा ध्यान कांग्रेस को पीछे हटाने पर है। इसके लिए चाहे उसे अन्दर खाते आम आदमी पार्टी की ही मदद क्यों न करनी पड़े। भाजपा जानती है कि कांग्रेस की बजाय उसके लिए 'आप' को कूट-छेतकर सीधा करना ज़्यादा आसान है। उत्तराखण्ड के चुनावों में भी भाजपा औजहीन-सी नज़र आ रही है। सत्ता विरोधी लहर की वजह से यहाँ बिल्ली के भाग से छीका टूटता हुआ दिख रहा है। किसी सही राजनीतिक विकल्प की ग़ैर-मौजूदगी में भी यहाँ पर हरीश रावत और पूरा कांग्रेसी ख़ेमा जीत के प्रति आश्वास्त-सा नज़र आ रहा है। केजरीवाल को यहाँ भी दौड़-धूप करते देखा जा सकता है। गोवा के विगत विधान सभा चुनाव में भाजपा ने बहुमत न होने के बावजूद भी सरकार बनायी थी। इसका कारण भाजपा के तथाकथित चाणक्य का वोट हासिल न होने की सूरत में सीधे विधायकों की सेंधमारी करने में माहिर होना पाया गया था। इस बार भी भाजपा इसी उम्मीद के सहारे चुनाव मैदान में है। श्रीमान सुथरे अरविन्द केजरीवाल का गोवा में भी सैर-सपाटा जारी है। 2017 के विगत विधान सभा चुनाव में मणिपुर में भी भाजपा बहुमत से काफ़ी पीछे थी। उस समय यहाँ कुल 60 विधान सभा सीटों में से कांग्रेस को 28 तो भाजपा को 21 सीटें मिली थी। यहाँ भी जोड़-तोड़ से भाजपा की सरकार बनी और कांग्रेसी मुँह ताकते रह गये थे।

कहने की ज़रूरत नहीं है कि उक्त पाँच राज्यों के चुनावों में चाहे कोई चुनावबाज़ पार्टी या गठबन्धन जीते इससे इन राज्यों की मेहनतकश जनता के जीवन में कोई वास्तविक बदलाव नहीं आने वाला है। जनता के एक हिस्से को यह भी पता है कि इन पूँजीवादी अवसरवादी चुनावी दलों और ठगों-बटमारों के गिरोहों में क़त्तई अन्तर नहीं है। लेकिन असल बात यह है कि इस समय देशव्यापी स्तर पर कोई सही राजनीतिक विकल्प मौजूद नहीं है। तमाम रंगों-झण्डों की पार्टियाँ उदारीकरण-निजीकरण की लुटेरी नीतियों को ही अंजाम तक पहुँचाने का काम करने वाली हैं। इतिहास गवाह है कि फ़ासीवाद को केवल और केवल मज़दूर वर्ग और आम जनता की वर्गीय आधार पर संगठित व एकजुट ताक़त ही शिकस्त दे सकती है। फ़ासीवाद कुछ और नहीं बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था के संकट के दौर में वित्तीय पूँजी की नंगी तानाशाही होता है। यही काम भाजपा कर भी रही है। इस काम में भाजपा के लिए तमाम पूँजीपति घरानों ने धन की बरसात ऐसे ही नहीं कर रखी है। चुनावी चन्दे से लेकर धन्नासेठ हर प्रकार की मदद भाजपा को कर रहे हैं। कहा भी गया है जो जिसका खाता है वह उसी का बजाता है। फ़ासीवादी भाजपा और पूरा संघ परिवार मुस्लिमों को नक़ली दुश्मन के तौर पर खड़ा करके व्यापक हिन्दू आबादी को भी साम्प्रदायिक राजनीति की आग में झोंकने का ही काम कर रहे हैं। इनके एजेण्डे में हिन्दू आबादी के लिए भी सिवाय बोगस नारों के कुछ भी नहीं है। यदि कहीं पर भाजपा और इसकी सहयोगी पार्टियों की हार भी होती है तो भले ही इससे जनता को एक तात्कालिक और अल्पकालिक राहत मिलती हुई प्रतीत हो लेकिन वास्तविकता में इससे फ़ासीवाद का संकट टलने वाला नहीं है। पूँजीवाद के ख़ात्मे के बिना फ़ासीवाद के ख़ात्मे की कल्पना भी बेमानी है। थियोडोर अड़ोर्नो एक जगह ठीक ही कहते हैं कि पूँजीवाद पर बात किये बिना फ़ासीवाद पर किसी को अपना मुँह भी नहीं खोलना चाहिए।

मौजूदा चुनावों में एक या दूसरे पूँजीवादी दल की जीत से अपनी बेहतरी की उम्मीद पालने की बजाय हमें अपनी वर्ग एकजुटता क़ायम करने और अपना स्वतंत्र राजनीतिक पक्ष खड़ा करने की ओर ध्यान देना चाहिए। चुनावों में इस या उस पार्टी की जीत के प्रति आश्वस्त और उत्साहित होने की बजाय जनपक्षधर ताक़तों को जनता के सही राजनीतिक विकल्प को वर्तमान करना चाहिए। संसदीय राजनीति में क्रान्तिकारी हस्तक्षेप करते हुए भी जनता के बीच संसदीय राजनीति के द्वारा समाज को बदलने के विभ्रम को भी अधिकाधिक नग्न करते जाना चाहिए। मेहनतकश जनता की असल मुक्ति तभी सम्भव हो सकती है जब उत्पादन और राजकाज पर मेहनतकश वर्गों का ही क़ब्ज़ा हो। मौजूदा दौर में यह चीज़ समाजवादी क्रान्ति के द्वारा ही फलीभूत हो सकती है। क्रान्ति की पूर्वशर्त क्रान्तिकारी पार्टी के निर्माण के लिए आज महती प्रयासों की दरकार है। पाँच राज्यों के विधान सभा चुनावों के परिणाम चाहे जो भी हों हमें अपने हक़-अधिकारों के लिए संगठित होकर संघर्ष किये बिना कुछ भी हासिल नहीं होगा। हमें मेहनतकश जनता की अपनी फ़ौलादी एकजुटता क़ायम करने पर अपना पूरा ध्यान केन्द्रित रखना चाहिए।

बुल्ली बाई और सुल्ली डील इस सड़ते हुए समाज में फैले ज़हर के लक्षण हैं

इस साल की शुरुआत में जहाँ एक ओर देशभर में लोग नये साल का जश्न मना रहे थे, वहीं देश में दूसरी ओर मानवता को शर्मसार कर देने वाली बेहद घिनौनी घटना घटी। सोशल मीडिया पर 'बुल्ली बाई' नाम के एक ऐप के ज़रिए कई मुस्लिम महिलाओं को निशाना बनाते हुए इस ऐप पर उनकी बोली लगायी गयी। उनकी तस्वीरों के साथ छेड़छाड़ कर उन्हें भद्दे रूप में पेश किया गया। इस पूरे प्रकरण में उन महिलाओं को निशाना बनाया गया, जो राजनीतिक, सामाजिक मुद्दों पर खुलकर अपना पक्ष रखती हैं, जो मौजूदा समाज में अन्याय के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाती हैं।

ग़ौरतलब है कि पिछले वर्ष 'सुल्ली डील्स' नाम के एक ऐप के ज़रिए भी इसी तरह की कोशिश की गयी थी। 'सुल्ली' (जो गाली हिन्दुत्ववादी फ़ासिस्टों द्वारा मुस्लिम महिलाओं को दी जाती है) के नाम से इस ऐप को बनाने का मक़सद ही यही था कि अपने हक़ों के लिए आवाज़ उठाने वाली महिलाओं को बदनाम किया जा सके। लोगों के काफ़ी प्रतिरोध के बाद इस ऐप को बन्द कराया गया, और प्रशासन द्वारा जाँच का आश्वासन दिया गया। लेकिन अगले छह महीने में ही यह दूसरी घटना प्रशासन को कटघरे में ज़रूर खड़ा करती है। 'बुल्ली बाई' ऐप के मामले में भी पुलिस ने काफ़ी दबाव में आने के बाद इसके दोषियों को गिरफ़्तार किया है। लेकिन इस साल के शुरुआत में एक बार फिर इस घिनौनी हरकतों को अंजाम देना यह साबित करता है कि पुलिस प्रशासन ने इससे पहले चन्द काग़ज़ी कार्रवाई के अलावा और कुछ भी नहीं किया है।

बुल्ली बाई ऐप बनाने के मामले के गिरफ़्तार 20 साल के नीरज बिशनोई के लैपटॉप से बरामद सामग्रियों से पता चलता है कि उसके दिमाग़ में किस हद तक नफ़रत और स्त्री-विरोधी मानसिकता भरी थी। यह कोई पहली घटना नहीं है, ज़्यादातर ऐसे मामलों को अंजाम देने वाले 18 से 20 साल के नौजवान हैं। सवाल यह उठता है कि आख़िर इस कुण्ठा, अवसाद और स्त्री विरोधी नफ़रती विचारधारा की जड़ कहाँ है? ज़ाहिरा तौर पर ऐसी मानसिकताओं के पैदा होने की ज़मीन व्यक्तिगत जीवन या पारिवारिक इतिहास में न होकर इस सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में है।

बुल्ली बाई ऐप बनाने के मामले में कुछ लोगों की गिरफ़्तारी तो हो गयी लेकिन इस बीमारी के असली ज़िम्मेदारों पर कोई कार्रवाई नहीं हुई है, और न होगी। नफ़रत का जो ज़हर ऐसे मानसिक बीमार अपराधियों को पैदा कर रहा है,

वह समाज के बहुत बड़े हिस्से की रगों में घुल चुका है। जो लोग इस ज़हर की खेती और कारोबार कर रहे हैं, वे सत्ता में बैठे हैं, उनके कारिन्दे देश की हर अहम संस्था में पैठे हुए हैं।

इस मुनाफ़ाख़ोर व्यवस्था ने अपने विकास के साथ ही समाज में अलगाव और अकेलापन, आत्मग्रस्तता, स्वार्थपरता और कुण्ठाएँ बढ़ायी हैं। इसे और फलने-फूलने के लिए खाद्य-पानी देने का काम हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादी विचारधारा ने किया है, जो महिलाओं को एक वस्तु और बच्चे पैदा करने की मशीन से अधिक कुछ भी नहीं समझती है। मुस्लिम महिलाओं के ख़िलाफ़ इस तरह की नफ़रती सोच फैलाने वाले आरएसएस और विश्व हिन्दू परिषद जैसे उन्मादी संगठन हैं, जो धर्म के नाम पर मासूम लोगों का क़त्ल करना सीखाते हैं। इनकी विचारधारा में बलात्कार को विरोधी पर विजय के हथियार के रूप में महिमामण्डित किया जाता है, ऐसे में उनसे स्त्रियों के सम्मान और हक़ की उम्मीद करना हमारी मूर्खता होगी।

गुजरात के नरसंहार के दौरान यही लोग थे, जिन्होंने हाथों में त्रिशूल लिये गर्भवती महिलाओं के पेट चीरकर नवजातों को मार दिया, और कहा कि इस तरीक़े से वे हिन्दू राष्ट्र बनायेंगे। आज ये लोग देश के बड़े संस्थानों से लेकर शहरों और गाँवों की गलियों तक पहुँचकर इस नफ़रती बीमार मानसिकता को पहुँचाने का काम कर रहे हैं।

इस नफ़रती और स्त्री विरोधी मानसिकता की जड़ पूँजीवाद और इसकी सड़न से निकले फ़ासीवाद में है। पूँजीवाद पितृसत्तात्मक विचारधारा को फलने फूलने की ज़मीन प्रदान करता है। यह इस विचारधारा को आत्मसात कर मुनाफ़े पर टिकी इस व्यवस्था को बनाये रखने में इस्तेमाल करता है। हर बेचे जाने वाली वस्तुओं के समान महिलाओं के शरीर को भी बिकाऊ माल की तरह पेश किया जाता है। बड़े-बड़े वाणिज्यिक पोस्टरों से लेकर मोबाइल फ़ोन के विज्ञापनों तक के माध्यम से इस विचारधारा को फैलाने का काम किया जाता है। फ़ासीवादी विचारधारा स्त्री विरोधी मानसिकता को और अधिक घिनौने रूप में पेश करती है। यह एक ख़ास समुदाय को निशाना बनाकर जनता की तमाम समस्याओं का ठीकरा उनपर फोड़ देता है, और अपने ख़िलाफ़ उठने वाली तमाम आवाज़ों को हर तरीक़े से दबाने की कोशिश करता है।

'बुल्ली बाई' और 'सुल्ली डील्स' जैसे ऐप इसी बीमार मानसिकता की अभिव्यक्ति है। इस घटना को फ़ासीवाद द्वारा अवाम विरोधी, स्त्री विरोधी हमले की ही अगली कड़ी के रूप में ही देखा जाना चाहिए। साथ ही आज इसके ख़िलाफ़ हर प्रगतिशील इन्सान को एकजुट होकर आवाज़ उठानी होगी। हमें इस बीमार मानसिकता के बरक्स एक सही और बेहतर विचार लोगों के बीच लेकर जाना होगा, और इन फ़ासीवादी स्त्री विरोधी, जन विरोधी तत्वों को अपने समाज से बेदख़ल करना होगा।

बजट : पूँजीपतियों की सेवा में बिछी मोदी सरकार की आम मेहनतकश जनता से फिर ग़द्दारी

(पेज 1 से आगे)

का प्रयास करते हैं, नयी तकनोलॉजी और मशीनें लगाते हैं, जिससे कि वे अपने माल की क़ीमत को कम-से-कम करके बाज़ार में ज़्यादा प्रतिस्पर्द्धी बन सकें। इस प्रक्रिया में समूची पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में मशीनों व कच्चे माल पर और अवरचनागत निवेश बढ़ता जाता है और श्रमशक्ति ख़रीदने पर निवेश सापेक्षत: कम होता जाता है, हालाँकि कुल मिलाकर निरपेक्ष अर्थों में यह भी दूरगामी तौर पर बढ़ता है। लेकिन मूल्य केवल मज़दूर के श्रम से पैदा होता है। नतीजतन, दीर्घकालिक तौर पर मुनाफ़े की औसत दर में गिरावट आती है क्योंकि मुनाफ़े की दर होती है मुनाफ़े और कुल पूँजी निवेश का अनुपात। यही पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का संकट होता है। भारतीय अर्थव्यवस्था भी विशेष तौर पर पिछले लगभग आठ-नौ वर्षों से इस मुनाफ़े के संकट से विशेष तौर पर जूझ रही है। नोटबन्दी और फिर कोरोना लॉकडाउन के दौरान पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का यह संकट और भी ज़्यादा गहराया। इस संकट की वजह से ही एक ओर अतिउत्पादन पैदा होता है और दूसरी ओर अल्पउपभोग की समस्या भी पैदा होती है क्योंकि मध्य वर्ग समेत आम मेहनतकश आबादी की औसत आमदनी कम होती है। उच्च मध्य वर्ग के लोग भी ख़र्च करने की बजाय बचत करते हैं। इसलिए तमाम सुधारवादी और संशोधनवादी (नक़ली कम्युनिस्टों) के विश्लेषण के विपरीत लोगों की ख़रीदने की क्षमता कम होना अपने आप में समस्या नहीं है बल्कि यह मुनाफ़े की दर का संकट है, जिसके कारण निवेश की दर में कमी आती है, रोज़गार और औसत मज़दूरी में कमी आती है और नतीजतन एक ओर अतिउत्पादन की समस्या पैदा होती है और दूसरी ओर अल्पउपभोग की। कुल घरेलू माँग का कम होना संकट का नतीजा है, संकट का कारण नहीं क्योंकि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था जनता के उपभोग के लिए उत्पादन नहीं करती है, बल्कि मुनाफ़े के लिए उत्पादन करती है। वैसे भी मेहनतकश जनता अपनी मज़दूरी के मूल्य के बराबर उपभोक्ता वस्तुएँ ही ख़रीद सकती है और इसलिए पूँजीपति वर्ग के लिए असली प्रभावी माँग स्वयं पूँजीपति वर्ग के भीतर ही पैदा होती है। और पूँजीपति वर्ग अपने उत्पादक उपभोग (यानी उत्पादन के साधन ख़रीदने के लिए निवेश) और वैयक्तिक उपभोग (यानी ऐशो-आराम की वस्तुओं व अन्य उपभोक्ता सामग्रियों पर ख़र्च) दोनों ही कम कर देता है। और पूँजीपति वर्ग यह तब करता है जब मुनाफ़े की दर के गिरने के कारण उसका मुनाफ़ा गिरता है। निश्चित तौर पर, संकट के गहराने पर मेहनतकश जनता के उपभोग में भी कमी आती है। लेकिन यह संकट का कारण नहीं बल्कि संकट का नतीजा होता है और जो पलटकर संकट को और बढ़ावा देता है। भारत की अर्थव्यवस्था दुनिया की अधिकांश अर्थव्यवस्थाओं के समान आज मुनाफ़े की गिरती दर के इसी संकट में घिरी हुई है और इस बजट में मोदी सरकार द्वारा उठाये गये क़दमों को भी इस सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है।

जैसा कि हमने ऊपर ज़िक्र किया, पिछले आठ वर्षों में पूँजीपतियों द्वारा निवेश में लगातार भारी कमी आयी है क्योंकि नये निवेश मुनाफ़े की गिरती दर के कारण पर्याप्त लाभप्रद नहीं हैं। चूँकि इस पूरे दौर में नये निवेश पर पर्याप्त मुनाफ़ा नहीं मिल पा रहा है, इसलिए निजी पूँजीपति उत्पादक निवेश करने में दिलचस्पी नहीं दिखला रहे हैं और इस दौर में अपनी पूँजी को सट्टेबाज़ी, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को ख़रीदने, छोटी व मँझोली तबाह होती पूँजी को निगलने, प्राकृतिक संसाधनों की लूट में ख़र्च करने में ज़्यादा दिलचस्पी दिखला रहे हैं। यही कारण है कि इस दौर में सबसे बड़े पूँजीपति, यानी देश के ऊपर के 2 प्रतिशत सबसे अमीर पूँजीपति और भी ज़्यादा अमीर हुए हैं, जबकि मँझोले और छोटे पूँजीपति अधिकांशत: घाटे में गये हैं और कई तबाह भी हुए हैं। हर संकट में यह होता भी है और यही पूँजीपतियों का दुश्मनाना 'भाईचारा' है, जिसमें वे एक वर्ग के तौर पर मज़दूरों के ख़िलाफ़ तो एकजुट होते हैं लेकिन आपसी प्रतिस्पर्द्धा में एक दूसरे की गर्दन पर उस्तरा फेर देने में भी संकोच नहीं दिखलाते हैं।

शेखचिल्ली के सपने बनाम कड़वी हक़ीक़त

बजट 2022 मोदी सरकार द्वारा पूँजीपतियों को मुनाफ़े की दर के संकट से निजात दिलाने का ही एक प्रयास दिखता है, जबकि मेहनतकश जनता के हितों को पूरी तरह से पूँजीपति वर्ग के जूतों तले रख दिया गया है। आइए देखते हैं कि पूँजीवादी संकट के दौर में यह बजट किस प्रकार अमीरों, धन्नासेठों और पूँजीपतियों के हितों की सेवा करने का काम करता है।

भारत की अर्थव्यवस्था क़रीब 2210 लाख करोड़ रुपये की हो गयी है। बजट क़रीब 40 लाख करोड़ का है। बजट में कहा गया है कि नॉमिनल तौर पर भारत की सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर 11.1 प्रतिशत होगी। इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि इसमें मुद्रास्फीति की दर को नहीं जोड़ा गया है। बजट 2022 का दावा है कि आने वाले साल में मुद्रास्फीति की दर 3 से 3.5 प्रतिशत के बराबर होगी, जो कि शेख़चिल्ली का सपना है। वास्तव में, इस समय थोक क़ीमत सूचकांक 13.56 प्रतिशत है जबकि उपभोक्ता क़ीमत सूचकांक 5.6 प्रतिशत है। इसके अलावा वैश्विक बाज़ार में कच्चे तेल की क़ीमतों में भी बढ़ोत्तरी हुई है। नवम्बर 2021 के बाद से मोदी सरकार ने पेट्रोल व डीज़ल की क़ीमतों में लगातार बेतहाशा की जा रही बढ़ोत्तरी को रोक दिया था क्योंकि उसे भी पता था कि चुनावों का मौसम आ चुका है। लेकिन यह तय है कि 10 मार्च 2022 को चुनाव परिणाम आते ही मोदी सरकार तत्काल पेट्रोल व डीज़ल की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी करेगी। उस समय थोक व उपभोक्ता क़ीमत सूचकांक दोनों ही ऊपर जायेंगे क्योंकि पेट्रोल व डीज़ल के दामों में होने वाली बढ़ोत्तरी हर चीज़ की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी करती है। भारत के कुल तेल उपभोग का 90 प्रतिशत आयात से होता है और जारी वित्तीय वर्ष में ही तेल के आयात के ख़र्च में 70 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई थी। इन तथ्यों के मद्देनज़र यह साफ़ है कि मुद्रास्फीति की दर किसी भी 3 या 3.5 प्रतिशत के दोगुने के आस-पास रहने वाली है। ऐसे में वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर 4.5 से 5 प्रतिशत के बीच रहने वाली है।

मोदी सरकार के पहले भी पेट्रोल उत्पादों पर लगाये जाने वाले करों व आयात शुल्क के कारण भारत में इनकी क़ीमत पाकिस्तान, श्रीलंका, आदि जैसे देशों से ज़्यादा थी लेकिन मोदी सरकार ने तो इनकी बढ़ोत्तरी के सारे रिकॉर्ड ध्वस्त कर दिये हैं। भारत में आम तौर पर सभी वस्तुओं व सेवाओं की महँगाई में सबसे बड़ा कारण पेट्रोल व डीज़ल पर लगने वाले शुल्क व कर हैं। इसका अन्दाज़ा आप इस बात से लगायें : भारत सरकार के कुल राजस्व का 25 प्रतिशत पेट्रोल उत्पादों पर डकैतों के समान लगाये जाने वाले करों व शुल्कों से हो रही है।

दूसरे शब्दों में, यह स्पष्ट है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में वृद्धि दर चालू वित्तीय वर्ष में 4 से 5 प्रतिशत से ज़्यादा नहीं होने वाली है और साथ ही महँगाई दर 6 से 7 प्रतिशत के ऊपर ही रहने वाली है। महँगाई के ऊपर रहने का एक कारण यह भी है कि निवेश की दर लगातार गिर रही है और तमाम बुनियादी मालों में आपूर्ति पक्ष का संकट है। आपूर्ति पक्ष का संकट तभी पैदा होता है जबकि मुनाफ़े की दर गिर रही हो, नतीजतन, निवेश की दर गिर रही हो। ऐसे में, महँगाई की दर और भी बढ़ती है। चालू वित्तीय वर्ष में भी इसकी उम्मीद की जा सकती है। जब अर्थव्यवस्था ठहरावग्रस्त हो और साथ ही महँगाई भी बढ़ रही हो, तो यह मुनाफ़े की दर के वापस स्वस्थ स्तरों पर न पहुँचने की सूरत में एक भयंकर कुचक्र का रूप ले सकता है, जिसे स्टैग्फ़्लेशन के नाम से जाना जाता है। ऐसे में न तो कीन्सीय सामाजिक ख़र्च बढ़ाने के नुस्ख़े काम आते हैं और न ही अन्य प्रकार का कल्याणवाद। उल्टे उससे स्टैग्फ़्लेशन का संकट और भी गहराता जाता है।

देश की सबसे अहम समस्या बेरोज़गारी पर चुप्पी

बजट 2022 इस समय देश की सबसे अहम समस्या यानी बेरोज़गारी पर बिल्कुल शान्त है। इसमें जो आर्थिक नीतियाँ सुझायी गयी हैं, वे वास्तव में बेरोज़गारी को कम करने की बजाय बढ़ाने वाली हैं। आइए देखते हैं कि यह कैसे होने वाला है। हम जानते हैं कि बजट आने के ठीक पहले आयी ऑक्सफ़ैम की असमानता सम्बन्धी रिपोर्ट ने बताया कि हमारे देश में जो नीचे की 60 प्रतिशत आबादी है, यानी मज़दूर आबादी, उसकी आमदनी में भारी गिरावट आयी है जबकि ऊपर के 20 प्रतिशत धन्नासेठों की औसत आमदनी बढ़ी है। सबसे नीचे के 30 प्रतिशत यानी मज़दूर आबादी का भी सबसे ग़रीब हिस्सा और भी ज़्यादा ग़रीब हुआ है। उसकी आमदनी में 54 प्रतिशत की गिरावट आयी है। वहीं दूसरी ओर ऊपर के 10 प्रतिशत धन्नसेठों व पूँजीपतियों की आय में 57 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी आयी है। यह सीधे-सीधे नये पैदा होने वाले मूल्य में मज़दूरी का हिस्सा घटने और मुनाफ़े का हिस्सा बढ़ने का प्रतीक है। एक आँकड़े से यह बात स्पष्ट हो जाती है : 1991 में कुल नये उत्पादित मूल्य में 65 प्रतिशत हिस्सा मज़दूरी का था और 35 प्रतिशत हिस्सा मुनाफ़े का, लेकिन आज इसका ठीक उल्टा है, यानी 65 प्रतिशत हिस्सा मुनाफ़े का है और 35 प्रतिशत हिस्सा मज़दूरी का। समाज में ग़ैर-बराबरी का आलम यह है कि ऊपर के 10 प्रतिशत लोग कुल समृद्धि के 57 प्रतिशत के स्वामी हैं, जबकि नीचे के 50 प्रतिशत लोगों के पास केवल 13 प्रतिशत है! 2021 में देश में 84 प्रतिशत घरों की औसत आमदनी में गिरावट आयी जबकि देश में सबसे अमीर अरबपतियों की संख्या 102 से बढ़कर 142 हो गयी! संकट के दौर में होने वाले पूँजी के केन्द्रीकरण में यह होता है और मोदी सरकार की नीतियों ने सामाजिक असमानता के बढ़ने की इस प्रक्रिया को और गति दी।

औसत मज़दूरी को घटाना मोदी सरकार का प्रमुख लक्ष्य है क्योंकि यह पूँजीपतियों के मुनाफ़े की दर को बढ़ाता है। इसलिए मज़दूरों की औसत आय बढ़ाने के लिए मोदी सरकार ने बजट में कोई क़दम नहीं उठाया है। दूसरी ओर पूँजीपतियों के मुनाफ़ा पीटने के नये-नये अवसर बनाने का काम भी यह बजट बख़ूबी करता है। बजट में सामाजिक ख़र्च में वास्तविक तौर पर कटौती की गयी है। नॉमिनल तौर पर सामाजिक ख़र्च में 4.5 प्रतिशत की ही बढ़ोत्तरी की गयी है, जो कि मुद्रास्फीति दर से भी कम है और इसलिए वास्तव में इस ख़र्च में कटौती की गयी है। सामाजिक ख़र्च को बढ़ाकर मेहनतकश व मज़दूर आबादी को तमाम सामाजिक सुरक्षा व लाभ दिये जा सकते थे, लेकिन ऐसा नहीं किया गया क्योंकि यह मज़दूर वर्ग की औसत मज़दूरी पर बढ़ने का दबाव पैदा करता है क्योंकि मज़दूर वर्ग की मोलभाव की क्षमता बढ़ती है। औसत मज़दूरी को घटाने के लिए मज़दूरों को पूर्ण रूप से अरक्षित रखना आवश्यक है। इस मामले में धनी किसानों व कुलकों के हितों का भी पूरा ख़्याल रखा गया है और आर्थिक सर्वेक्षण द्वारा मनरेगा के बजट को 73,000 करोड़ से बढ़ाकर 98,000 करोड़ करने की बात को झुठलाते हुए बजट ने मनरेगा के बजट को 73,000 करोड़ रुपये ही रखा जो कि वास्तविक गिरावट है क्योंकि मुद्रास्फीति बढ़ी है। और यह तब किया जा रहा है कि जबकि मनरेगा में मज़दूरों को कई जगहों पर काम ही नहीं मिल पा रहा है या मात्र 50 दिन का काम मिल रहा है।

पूँजीपतियों का मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए रोज़गार के अवसरों की बलि

लेकिन दूसरी तरफ़ पूँजी ख़र्च में 36 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी करने का प्रावधान किया गया है। यह दीगर बात है कि जो संशोधित आकलन पेश किया गया है, उसके अनुसार यह बढ़ोत्तरी मात्र 24 प्रतिशत होगी, लेकिन यह 24 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी भी पर्याप्त है। पूँजी ख़र्च में होने वाली यह बढ़ोत्तरी वास्तव में दीर्घकालिक अवसंरचनागत प्रोजेक्टों में लगायी जायेगी। लेकिन ये सारे प्रोजेक्ट पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप के मातहत चलेंगे। यह पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप वास्तव में और कुछ नहीं बल्कि जनता के धन पर पूँजीपतियों को मुनाफ़ा पीटने की इजाज़त देने का तरीक़ा है। इसलिए इन सभी प्रोजेक्टों में जनता का पैसा ख़र्च होगा और उसके आधार पर मुनाफ़ा पीटने की आज़ादी निजी पूँजीपति वर्ग को मिलेगी। हालाँकि मुनाफ़े की दर के संकट के कारण पूँजीपति वर्ग ने पिछले वर्ष इस प्रकार के प्रोजेक्टों में भी कम दिलचस्पी दिखलायी थी और ऐसे प्रोजेक्टों के लिए पिछले वित्तीय वर्ष में आवण्टित 5.44 लाख करोड़ रुपये में से नवम्बर 2021 तक 50 प्रतिशत भी ख़र्च नहीं हो पाया था। ज़ाहिर है, पिछले वित्तीय वर्ष के बचे हुए समय में बाक़ी 50 प्रतिशत ख़र्च हो पाना असम्भव है। यह भी ग़ौरतलब बात है कि दीर्घकालिक अवसरंचनागत परियोजनाओं में होने वाला निवेश पूँजी-सघन होता है, श्रम-सघन नहीं। इसलिए इससे तत्काल रोज़गार नहीं पैदा होने वाला है। लेकिन दूरगामी तौर पर यह पूँजीपति वर्ग को मुनाफ़ा देता है और उसके मुनाफ़े की दर को बढ़ाता है। साथ ही, ये परियोजनाओं अन्ततः सबसे ज़्यादा काम पूँजीपतियों के ही आती हैं और उनकी लागतों को कम करती हैं और मुनाफ़े को बढ़ाती हैं।

वास्तव में, यदि सरकार द्वारा ख़र्च का बड़ा हिस्सा गाँवों में विकास कार्यों, मनरेगा, व अन्य सामाजिक मदों में लगाया जाता तो रोज़गार की दर भी बढ़ती और साथ ही मज़दूरों व मेहनतकशों की औसत आमदनी भी बढ़ती। साथ ही, शिक्षा और स्वास्थ्य में ख़र्च की बढ़ोत्तरी से भी रोज़गार सृजन ज़्यादा होता। लेकिन मोदी सरकार ने अपनी फ़ासीवादी असंवेदनशीलता

(पेज 10 पर जारी)

बजट : पूँजीपतियों की सेवा में बिछी मोदी सरकार की आम मेहनतकश जनता से फिर ग़द्दारी

(पेज 9 से आगे)

दिखलाते हुए महामारी के जारी दौर में भी स्वास्थ्य के ख़र्च में कोई बढ़ोत्तरी नहीं की है, जबकि इस समय इसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी। स्वास्थ्य के लिए कुल ख़र्च मात्र 0.23 प्रतिशत बढ़ाकर रु. 86,200 करोड़ किया गया है। ताज्जुब की बात है कि वैक्सीनेशन के लिए मात्र रु. 5000 करोड़ ही आवण्टित किये गये हैं!

शिक्षा के ख़र्च में 11.86 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी करके उसे रु. 1,04,278 करोड़ किया गया है। लेकिन ज़्यादा आशावादी होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि सरकार ने इसमें निजीकरण और डिजिटलाइज़ेशन पर ज़ोर दिया है। नये शिक्षकों की स्कूलों से लेकर कॉलेजों के स्तर तक भर्ती पर एक शब्द भी नहीं कहा गया है। लेकिन शिक्षा के इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में भारी बढ़ोत्तरी की बात की गयी है! यानी शिक्षा के क्षेत्र में नयी भर्तियों के ज़रिए रोज़गार पैदा करने की बजाय बचे-खुचे रोज़गारों को ख़त्म करने और निजीकरण की लहर चलाने का इरादा है।

खेती के क्षेत्र में कुल ख़र्च में सरकार ने वास्तविक तौर पर कटौती की है। कुछ महत्वपूर्ण योजनाएँ जिनका थोड़ा-बहुत फ़ायदा ग़रीब व मँझोले किसानों को मिलता था, उनमें या तो कोई बढ़ोत्तरी नहीं की गयी है या उनमें कटौती की गयी है। लाभकारी मूल्य पर ख़रीद के लिए आवण्टित फ़ण्ड में सरकार ने वास्तविक कटौती की है। यह औद्योगिक-वित्तीय पूँजीपतियों व खेतिहर पूँजीपति वर्ग यानी धनी किसानों व कुलकों के बीच अन्तरविरोध का प्रमुख मसला है। लाभकारी मूल्य को बढ़ाने का अर्थ है तमाम प्रमुख कृषि उत्पादों विशेषकर खाद्यान्न की बाज़ार क़ीमतों के लिए एक ऊँचा फ़्लोर लेवल फ़िक्स करना और इस इजारेदार क़ीमत द्वारा धनी किसानों व कुलकों को बेशी मुनाफ़ा देना। यह मज़दूरों की औसत मज़दूरी पर बढ़ने का दबाव पैदा करता है, जो कि पूँजीपति वर्ग के लिए नुक़सानदेह होता है क्योंकि यह उसकी मुनाफ़े की दर के लिए ख़तरा पैदा करता है। यदि मज़दूरों की औसत मज़दूरी नहीं बढ़ती, तो फिर उनकी वास्तविक मज़दूरी कम होती जाती है क्योंकि धनी किसानों व कुलकों के लाभ के लिए खाद्यान्न की क़ीमतें बढ़ायी जाती हैं। एमएसपी पर चल रही जद्दोजहद में मोदी सरकार को धनी किसानों-कुलकों के आन्दोलन के समक्ष क़दम पीछे हटाने पड़े थे। लेकिन मोदी सरकार ने बजट में एमएसपी पर ख़रीद के लिए आवण्टित फ़ण्ड में कटौती करके अपना इरादा स्पष्ट कर दिया है : औद्योगिक-वित्तीय पूँजीपति वर्ग के हितों के मद्देनज़र वह एमएसपी पर ख़रीद को कम करेगी।

साथ ही, पीएम आशा योजना, जो कि दलहन व तिलहन की एमएसपी पर ख़रीद के लिए है, पर फ़ण्ड में भी कटौती की गयी है। लेकिन मज़ेदार बात यह है कि पिछले वित्तीय वर्ष के दौरान दलहन व तिलहन उगाने वाले धनी किसानों-कुलकों ने सरकार को दालें व तिलहन बेचे ही नहीं क्योंकि खुले बाज़ार में उसकी ज़्यादा क़ीमत मिल रही थी। साफ़ है कि धनी किसानों-कुलकों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली बचाने को लेकर पेट में कोई दर्द नहीं उठा था। उनका एकमात्र लक्ष्य था मुनाफ़ा और अधिक से अधिक मुनाफ़ा। सरकार से वे गारण्टी चाहते हैंकि वह ऊँचा एमएसपी दे लेकिन जब बाज़ार में क़ीमतें उससे ऊँची हों, तो वे खुले बाज़ार में बेचने की स्वतंत्रता भी चाहते हैं, जो कि नैसर्गिक है क्योंकि कोई भी पूँजीपति अपनी यह स्वतंत्रता नहीं छोड़ना चाहता।

एमएसपी पर ख़रीद के फ़ण्ड में कटौती पर मज़दूरों व आम मेहनतकशों को परेशान होने की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि एमएसपी मज़दूरों और आम मेहनतकशों के भी हित के ख़िलाफ़ है और यहाँ तक कि ग़रीब व उन मँझोले किसानों के हितों के भी ख़िलाफ़ है जो कि सालभर में जितने कृषि उत्पाद बेचते हैं, उससे ज़्यादा कृषि उत्पाद ख़रीदते हैं। इसलिए लाभकारी मूल्य (यानी एमएसपी) की व्यवस्था क़तई व्यापक आम मेहनतकश जनता के हितों में नहीं है।

लेकिन साथ ही मोदी सरकार ने खाद्य सब्सिडी में भी पिछले वर्ष के बजट के संशोधित आकलन के मुक़ाबले 28 प्रतिशत की कमी की है। इसके अलावा, उन सब्सिडियों को भी ख़त्म किया गया है जिनका कुछ फ़ायदा ग़रीब व मँझोले किसानों को भी मिलता है, हालाँकि उन सब्सिडियों का भी समर्थन बिना शर्त तभी किया जा सकता है, जबकि सरकार उसके लिए धनी वर्गों पर विशेष कर लगाये। यदि व्यापक ग्रामीण व शहरी आम मेहनतकश जनता से निचोड़े गये करों से खेती के इनपुट उत्पादों पर मिलने वाली सब्सिडियों का लाभ मुख्यतः धनी व उच्च मध्यम किसानों को मिलता है, तो उसका समर्थन नहीं किया जा सकता है। मोदी सरकार ने कृषि उन्नति योजना के तहत फ़ण्ड आवण्टन को बढ़ाकर तिलहन और दलहन उत्पादन में आयात पर निर्भरता को ख़त्म करने के लिए कुछ क़दम उठाये हैं क्योंकि पिछले वर्ष भारत में वनस्पति तेल की क़ीमत विश्व बाज़ार में आपूर्ति झटके के कारण और भारत के अपने वनस्पति तेल के लगभग 70 फ़ीसदी से ज़्यादा हिस्से के लिए आयात पर निर्भर होने के कारण अनियंत्रित तरीक़े से बढ़ी थीं। इनके बढ़ने का दूरगामी तौर पर पूँजीपतियों को नुक़सान होता क्योंकि इससे श्रमशक्ति का मूल्य बढ़ता है और अन्ततः उसकी क़ीमत यानी मज़दूरी में भी बढ़ोत्तरी का दबाव पैदा होता है।

खेती के क्षेत्र में असली आवश्यकता थी व्यापक पैमाने पर अवसंरचनागत ढाँचे का निर्माण, सिंचाई की व्यवस्था को खड़ा करना, बिजली पहुँचाना व धनी वर्गों पर विशेष कर लगाकर ग़रीब किसानों व मँझोले किसानों के लिए इनपुट्स की क़ीमतों के बोझ को कम करना। लेकिन इस दिशा में बजट में कुछ भी नहीं किया गया। उल्टे एग्री इन्फ्रास्ट्रक्चर फ़ण्ड को पिछले वर्ष के रु. 900 करोड़ से घटाकर रु. 500 करोड़ कर दिया गया है। यह भी सोचने की बात है कि पिछले वर्ष भी आवण्टित रु. 900 करोड़ में से केवल रु. 200 करोड़ ही ख़र्च हुए थे। मनरेगा में किस प्रकार लगभग 25 प्रतिशत कम फ़ण्ड आवण्टित किया गया है, उसकी हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। संक्षेप में, मोदी सरकार ने गाँव के ग़रीबों यानी खेतिहर व अन्य ग्रामीण मज़दूरों, ग़रीब व मध्यम किसानों और अन्य मेहनतकशों के लिए कुछ भी नहीं किया है। सही है कि उसने धनी किसानों व कुलकों के फ़ायदे के लिए बनी एमएसपी की व्यवस्था के लिए फ़ण्ड आवण्टन कम किया है, लेकिन यह वित्तीय-औद्योगिक पूँजीपति वर्ग और खेतिहर पूँजीपति वर्ग के आपसी अन्तरविरोध का मसला है और चूँकि एमएसपी की व्यवस्था मज़दूरों और ग़रीब मेहनतकशों के ख़िलाफ़ जाती है इसलिए हम किसी भी तरीक़े से एमएसपी का समर्थन नहीं कर सकते और इसका यह अर्थ भी कुलकवादी व नरोदवादी ही निकाल सकते हैं कि एमएसपी के समर्थन न करने का अर्थ बड़े पूँजीपतियों का समर्थन करना है। उल्टे जो बड़े पूँजीपतियों का विरोध करने के लिए अपेक्षाकृत छोटे पूँजीपतियों की गोद में बैठने को तैयार है वह मज़दूर वर्ग का नुमाइन्दा नहीं है, बल्कि स्वयं टुटपुँजिया राजनीति और विचारधारा का वाहक है। इसके अलावा, गाँवों में पूँजीवादी खेती के विकास, विशेष तौर पर तिलहन व दलहन, होर्टीकल्चर, आधुनिक पूँजीवादी पशुपालन, फ़िशरी आदि का रास्ता भी मौजूदा बजट इस प्रकार खोलता है जिससे कि धनी किसानों-कुलकों के वर्ग को ही लाभ मिलेगा।

अन्त में कहा जा सकता है कि मोदी सरकार के इस बजट का प्रमुख लक्ष्य था पूँजीपतियों को मुनाफ़े की गिरती दर के संकट से राहत दिलाना और इसके लिए औसत मज़दूरी पर गिरने का दबाव पैदा करने वाली, अवसंरचनागत क्षेत्र में पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप के ज़रिए पूँजीपतियों के लिए निजीकरण के रास्ते मुनाफ़ा पीटने के नये क्षेत्र खोलने वाली, महँगाई और बेरोज़गारी को बढ़ाने वाली आर्थिक नीतियाँ पेश करना। न तो जीएसटी में कोई कटौती की गयी और न ही पेट्रोल व डीज़ल पर लगने वाले करों और शुल्कों में, जिससे कि महँगाई में कमी आ सकती थी। साथ ही, उन क्षेत्रों में निवेश को भी नहीं बढ़ाया गया जो तात्कालिक तौर पर बेरोज़गारी की विकराल स्थिति से कुछ राहत दिला पाते, मसलन, अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र के लिए कोई पैकेज, ग्रामीण विकास योजनाओं में निवेश आदि, बल्कि दीर्घकालिक पूँजी-सघन इन्फ्रास्ट्रक्चरल प्रोजेक्ट्स में भारी पूँजी निवेश करने की योजना है और वह भी पीपीपी के नाम पर निजी क्षेत्र को लूट की खुली छूट देकर। यानी, रोज़गार भी अधिक नहीं पैदा होगा और पूँजीपतियों को जनता के धन के आधार पर मुनाफ़ा पीटने का पूरा अवसर भी मिलेगा। पूँजीपति वर्ग के हितों के रखवाले के तौर पर पूँजीवादी राज्यसत्ता और फ़िलहाल सत्ता में क़ाबिज़ फ़ासीवादी मोदी सरकार वही कर रही है जिसकी उससे उम्मीद की जा सकता है : पूँजीपतियों के दूरगामी सामूहिक हितों की सेवा और मज़दूर वर्ग के हितों पर हमला।

लोगों को बेवक़ूफ़ बनाने के लिए बहिष्कार के ढिंढोरे के बीच चीन के साथ कारोबार का नया रिकॉर्ड!

मोदी सरकार के अन्धभक्त चीन के विरोध के नाम पर चीनी खिलौनों और झालरों के बहिकार का अभियान चीनी मोबाइल फ़ोन से सोशल मीडिया पर चलाते रहते हैं! लेकिन मोदी के "ख़ून में व्यापार है", इसलिए मोदी सरकार चीन के साथ धुआँधार कारोबार बढ़ा रही है। कहने की ज़रूरत नहीं कि इसमें चीन से भारत में होने वाले आयात का हिस्सा ही सबसे बड़ा है। चीन का भारत में बड़े पैमाने पर पूँजी निवेश भी जारी है।

फ़ासिस्टी राज्यसत्ता प्रतिक्रियावादी बहुसंख्यकवादी अन्धराष्ट्रवाद के उन्माद का ज़हर जनता के बीच परोसकर उन्हें नफ़रती भीड़ में तब्दील करती रहती है। अपने इस एजेण्डे को पूरा करने के लिए संघ व भाजपा स्वदेशी अपनाने व आत्मनिर्भर राष्ट्र के निर्माण का राग अलापते रहते हैं। संघ व उसके अनुषंगी संगठनों द्वारा समय-समय पर छोटे-मोटे चीनी उत्पादों के विरोध करने का स्वांग रचा जाता है। अपने इन विरोध प्रदर्शनों के दौरान संघ परिवार की गुण्डा वाहिनियाँ चीनी खिलौने व इलेक्ट्रॉनिक सामान आदि बेचने वाले फ़ुटपाथ के छोटे दुकानदारों के साथ हिंसा भी करते हैं।

वर्ष 2020 में गलवान घाटी विवाद व उसके बाद हुए अरुणाचल प्रदेश सीमा विवाद के उपरान्त संघ व भाजपा से जुड़े नेता बड़े ज़ोर-शोर से चीनी उत्पादों का बहिष्कार कर, चीन को सबक़ सिखाने की बात कर रहे थे। मोदी सरकार की चाटुकारिता करने वाले अख़बार व न्यूज़ चैनल भी अपने आक़ाओं के सुर में सुर मिलाते हुए चीन से आयातित वस्तुओं का बहिष्कार कर चीनी अर्थव्यवस्था की कमर तोड़ देने के आह्वान कर रहे थे। लेकिन वास्तविकता यह है कि ख़ुद भाजपा के शासनकाल में पिछले वर्ष चीन द्वारा भारत को निर्यात 97.5 अरब डॉलर तक पहुँच गया है, जो कि अब तक सर्वाधिक है। चीन और भारत के बीच कुल कारोबार 125 अरब डॉलर के रिकॉर्ड आँकड़े को छू रहा है।

कोविड महामारी के दौरान तो दवाइयों के निर्माण में प्रयुक्त होने वाले रसायन, पीपीई किट, ऑक्सीजन कंसेण्ट्रेटर्स आदि का चीन से आयात बड़े पैमाने पर किया गया। चीन द्वारा भारत को किये गये इलेक्ट्रॉनिक उत्पादों व अन्य पेट्रोकेमिकल उत्पादों के निर्यात में भी भारी वृद्धि हुई है। यह भी अनुमान लगाया जा रहा है कि चीन द्वारा भारत को किये जा रहे निर्यात में आने वाले वर्षों में और भी वृद्धि होगी।

बढ़ते चीनी सस्ते माल के आयात का फ़ायदा बिचौलियों और बड़े वाणिज्यिक पूँजीपतियों को होता है। चूँकि वाणिज्यिक पूँजीपतियों के समक्ष देश का बाज़ार पूरी तरह से खुला है, इसलिए इन पूँजीपतियों को भी पूँजीवादी लूट का एक बड़ा हिस्सा मिलता है। दूसरी बात यह कि आयातित मालों का इस्तेमाल भारतीय औद्योगिक पूँजीपति वर्ग भी भरपूर करता है, विशेषकर कच्चे माल के तौर पर जोकि अमूमन चीन से आयातित होने के कारण सस्ते पड़ते हैं। साथ ही भारतीय औद्योगिक पूँजीपति और चीनी पूँजीपति कई सारे उपक्रमों में मिलकर निवेश करते हैं और वस्तुतः एक दूसरे के साझेदार होते हैं। इस तरह चीनी सस्ते माल के आयात से चीनी पूँजीपतियों को तो फ़ायदा होता ही है, बल्कि भारतीय पूँजीपति भी मालामाल होते हैं।

केन्द्र में सत्तासीन सरकार वास्तविकता में बड़े देशी पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी की तरह ही काम कर रही है। अपने इन मालिकों का मुनाफ़ा बरक़रार रखने के लिए चीनी सस्ते मालों के निर्यात को इसी तरह जारी रखना भाजपा के लिए भी ज़रूरी हो जाता है। भक्तों और आम जनता को बेवक़ूफ़ बनाने के लिए बहिष्कार की जुमलेबाज़ी चलती रहती है।

दरअसल यही उनकी झूठी देशभक्ति की सच्चाई है, उनके लिए देशप्रेम केवल मुट्ठीभर पूँजीपतियों के हितों की रक्षा करना है। अपनी इस खोखली राष्ट्रभक्ति का ढिंढोरा पीटकर, उन्मादी अन्धराष्ट्रवादी प्रचार के सहारे अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंकना व सत्ता में पहुँचकर पूँजीपतियों की सेवा करना ही फ़ासीवादी भाजपा व संघ परिवार का ध्येय होता है। पर इनके इस दोमुँहेपन का सच लाख छिपाने पर भी सामने आ ही जाता है।

– बिगुल डेस्क

कज़ाख़स्तान में आम मेहनतकश जनता की बग़ावत

डॉ. ऋषि

कज़ाख़स्तान में इस साल की शुरुआत बग़ावत के स्तर तक पहुँच गये मज़दूरों और आम जनता के सत्ता-विरोधी प्रदर्शनों के साथ हुई। ये विरोध प्रदर्शन कज़ाख़स्तान के लगभग सभी बड़े शहरों में हुए और प्रदर्शनकारियों द्वारा कई शहरों और प्रदेशों के प्रशासनिक व पुलिस प्रतिष्ठानों पर क़ब्ज़ा कर लिया गया। देश के सबसे बड़े शहर अलमाती में हवाई अड्डे पर भी प्रदर्शनकारियों ने क़ब्ज़ा कर लिया। राष्ट्रपति कासिम तोकायेव द्वारा तत्काल ही प्रदर्शनकारियों की आर्थिक माँगों को एक हद तक मान लिया गया, देश की सरकार को भंग कर दिया गया तथा 'कज़ाख़स्तान की सुरक्षा परिषद्' के चेयरमैन और परदे के पीछे से अभी तक शासन पर नियंत्रण रख रहे भूतपूर्व राष्ट्रपति नूर सुल्तान नज़रबायेव को भी हटा दिया गया। लेकिन उसके बाद भी जब प्रदर्शन उग्र से उग्रतर होते गये तो राष्ट्रपति तोकायेव द्वारा बाहर के मुल्कों, विशेषकर रूस की सेना बुलाकर इस प्रदर्शन को बेरहमी से कुचला गया। देशी-विदेशी सैन्य-बलों द्वारा सैकड़ों लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया और हज़ारों मज़दूरों, राजनीतिक कार्यकर्ताओं तथा मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को हिरासत में ले लिया गया है।

जहाँ एक ओर कज़ाख़स्तान की सरकार तथा मीडिया द्वारा प्रदर्शनकारियों को विदेशी ताकतों द्वारा समर्थित आतंकवादी घोषित कर दिया गया है, वहीं दूसरी ओर पश्चिमी देशों के मीडिया में इसे निरंकुश नौकरशाह राज्यसत्ता के भीतर मौजूद अलग-अलग धड़ों के द्वारा सत्ता के लिए संघर्ष या फिर लिबरल बुद्धिजीवियों और "प्रगतिशील बुर्जुआ वर्ग" के नेतृत्व में जनता द्वारा 'लोकतंत्र' की बहाली के लिए संघर्ष के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। कज़ाख़स्तान की निरंकुश पूँजीवादी राज्यसत्ता तथा देशी-विदेशी पूँजीवादी मीडिया इस तथ्य को छिपाने की पुरज़ोर कोशिश कर रहे हैं कि इस बग़ावत की शुरुआत देश के उन इलाक़ों से हुई जहाँ बड़ी तादाद में मज़दूर आबादी रहती है जिसमें अपने काम व ज़िन्दगी के बदतर होते हालात की वजह से राज्यसत्ता के ख़िलाफ़ असन्तोष बढ़ता जा रहा था और इस चिंगारी ने जंगल की आग की तरह फैलकर लगभग सभी बड़े शहरों और प्रान्तों के बेरोज़गार नौजवानों और निम्न-मध्य वर्ग की एक बड़ी आबादी को अपने दायरे में ले लिया था। पूँजीवादी राज्यसत्ता और उसके टुकड़ों पर पलने वाली मीडिया से इसके अलावा और कोई उम्मीद की भी नहीं जा सकती है कि वह पूँजीवाद को क़ब्र में पहुँचाने की क्षमता रखने वाले मज़दूर वर्ग से हमेशा आतंकित रहे और उसके आन्दोलनों और क्रान्तिकारी कार्रवाइयों को अपने बेशर्म झूठों से ढाँपने -छुपाने का प्रयास करे।

इस पूरे घटनाक्रम को समझने के लिए हमें घटनाओं को थोड़ा विस्तार से देखना होगा। कज़ाख़स्तान सरकार द्वारा प्राकृतिक गैस पर दी जाने वाली सब्सिडी को 1 जनवरी 2022 से समाप्त कर दिया गया था जिसकी वजह से गैस के दामों में दोगुने से भी ज़्यादा की बढ़ोत्तरी हो गयी थी। इस बढ़ोत्तरी के ख़िलाफ़ 2 जनवरी को कज़ाख़स्तान के पश्चिमी प्रदेश मांगिस्ताओ के ज़नाओज़ेन शहर की आम जनता सड़कों पर आ गयी। उसी दिन यह प्रदर्शन प्रशासनिक केन्द्र सहित पूरे अतिराओ प्रदेश में फैल गया जहाँ प्रदर्शनकारियों ने सेण्ट्रल चौक पर टेण्ट लगाने शुरू कर दिये थे। ग़ौरतलब है कि मांगिस्ताओ कज़ाख़स्तान का एक मुख्य तेल-उत्पादक प्रदेश है और यहाँ प्राकृतिक गैस खाना बनाने, घरों को गर्म करने के साथ ही गाड़ियों के ईंधन के रूप में भी प्रयोग में लायी जाती है। गैस के दाम दोगुने होने का मतलब है – घरेलू ख़र्चों में बेतहाशा बढ़ोत्तरी जोकि पहले से महँगाई, बेरोज़गारी और कम वेतन से त्रस्त आम जनता के लिए बर्दाश्त से बाहर थी। 3 जनवरी को तेल का उत्पादन करने वाली कम्पनियों में हड़ताल हो गयी। तेल-मज़दूरों की माँगें थीं : वेतन में दोगुने की बढ़ोत्तरी, काम की स्थिति में सुधार, स्वतंत्र ट्रेड यूनियन बनाने का अधिकार तथा राजनीतिक पार्टियों पर जारी प्रतिबन्ध को समाप्त करना। इस तरह हम देख सकते हैं कि मज़दूर सिर्फ़ आर्थिक माँगें ही नहीं बल्कि राजनीतिक माँगें भी उठा रहे थे। ग़ौरतलब है कि कज़ाख़स्तान में सरकार द्वारा एक लम्बे समय से ट्रेड यूनियनों तथा राजनीतिक पार्टियों पर प्रतिबन्ध लगाया हुआ है।

शुरू में सरकार ने कोई भी माँग मानने से इन्कार कर दिया लेकिन प्रदर्शनकारियों के जुझारू तेवर देखकर बाद में उसने गैस के दाम कुछ कम करने की घोषणा की। लेकिन उससे भी कोई फ़र्क़ नहीं पड़ा और 4 जनवरी को पूरे देश में विरोध-प्रदर्शन होने लगे। मध्य कज़ाख़स्तान के करागांदा प्रदेश में आर्सेलर मित्तल कम्पनी के खान मज़दूरों और कज़ाख़मिस निगम के धातु व खान मज़दूरों ने हड़ताल कर दी। देश के लगभग सभी प्रदेशों के प्रशासनिक केन्द्रों में हज़ारों की तादाद में प्रदर्शनकारी शहरों के केन्द्रीय चौकों में जमा हो गये और मांगिस्ताओ की तर्ज पर ही आर्थिक व राजनीतिक माँगें उठाने लगे। अब सरकार और राष्ट्रपति को बर्ख़ास्त करने, संसद को भंग करने, नये चुनाव कराये जाने तथा राजनीतिक बन्दियों को रिहा करने जैसी राजनीतिक माँगें भी रखी जाने लगीं। 4 जनवरी की शाम को अलमाती शहर के 'गणतंत्र चौक' पर पहुँचे हज़ारों प्रदर्शनकारियों की पुलिस और नेशनल गार्ड के दस्तों के साथ भिड़न्त हुई। इन प्रदर्शनकारियों में बड़ी तादाद शहर की ग़रीब बस्तियों के नौजवानों और मज़दूरों की थी। पुलिस और नेशनल गार्ड द्वारा उन पर स्टन ग्रेनेड, आँसू गैस व रबर की गोलियों से हमला किया गया। प्रदर्शनकारियों की ओर से भी माक़ूल जवाब दिया गया और कई दिनों तक शहर के केन्द्रीय चौराहे व सड़कों पर गोलियों और बमों की आवाज़ें गूँजती रहीं। विद्रोहियों द्वारा मुख्य प्रशासनिक बिल्डिंग पर क़ब्ज़ा करके आग लगा दी गयी। उसी शाम को राष्ट्रपति तोकायेव ने मांगिस्ताओ प्रदेश और अलमाती शहर में आपातकाल लागू कर दिया, सरकार को बर्ख़ास्त कर दिया और गैस के दामों को पुराने स्तर पर लाने की घोषणा की।

इस सबके बावजूद प्रदर्शनकारी अलमाती शहर की सड़कों पर डटे रहे। उन्होंने हथियारों की दुकानों को लूट लिया, शहर के मेयर के घर को आग लगा दी और अलमाती के हवाई अड्डे पर भी क़ब्ज़ा कर लिया था। देशभर में सत्तारूढ़ पार्टी नुर ओतन के दफ़्तरों पर भी कई जगह हमला किया गया और उनमें आग लगा दी गयी। कई जगहों पर सुरक्षा बलों के वाहनों में आग लगा दी गयी और उन्हें पीछे धकेल दिया गया। ऐसी ख़बरें भी हैं कि कई जगहों पर सुरक्षा बलों ने प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने से मना कर दिया और उनके साथ मिल गये। अपने पैरों के नीचे से ज़मीन खिसकते देख तोकायेव ने 'कज़ाख़स्तान की सुरक्षा परिषद्' के चेयरमैन और भूतपूर्व राष्ट्रपति नूर सुल्तान नज़रबायेव को हटाकर स्वयं उस पद को हथिया लिया, पूरे देश में आपातकाल लागू कर दिया और साथ ही 'सामूहिक सुरक्षा सन्धि संगठन', जिसमें रूस के नेतृत्व में आर्मीनिया, बेलारूस, किर्गिज़स्तान और ताज़िकिस्तान शामिल हैं, से अपनी फ़ौजी टुकड़ियों को भेजने की अपील की। 6 जनवरी की सुबह रूस के 3000 सैनिकों के कज़ाख़स्तान पहुँचने के बाद सरकार अगले कई दिनों तक प्रदर्शनकारियों के भयंकर दमन के बाद ही स्थिति को अपने नियंत्रण में ला पायी।

कज़ाख़स्तान के वर्तमान आर्थिक-राजनीतिक परिदृश्य को समझने के लिए हमें उसके इतिहास में थोड़ा पीछे जाना होगा। 1953 में स्तालिन की मृत्यु के बाद सोवियत संघ की सत्ता पर क़ाबिज़ होने वाले संशोधनवादियों द्वारा पूँजीवाद का रास्ता पकड़ लेने के बाद से पार्टी और सत्ता के प्रतिष्ठानों में जनवाद का ख़ात्मा करके खुलेआम नौकरशाही और व्यक्तिवाद की स्थापना की गयी और यही प्रक्रिया सोवियत संघ में शामिल विभिन्न गणराज्यों में भी घटित हुई। गणराज्यों में भी पार्टी व राज्य के ढाँचे पर नौकरशाहों, उनके परिवार के लोगों और उनके लग्गू-भग्गुओं का क़ब्ज़ा होने लगा। 1991 में संशोधनवादी सोवियत संघ के विघटन के बाद कज़ाख़स्तान ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की और वहाँ पार्टी की केन्द्रीय समिति का प्रथम सचिव नूर सुल्तान नज़रबायेव वहाँ का प्रथम राष्ट्रपति बना। पार्टी में पहले से ही भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद का बोलबाला था और नज़रबायेव ने इसे खाद-पानी देकर और मज़बूत किया।

कज़ाख़स्तान के स्वतंत्र होने के बाद नज़रबायेव ने एक निरंकुश नौकरशाह क़िस्म की पूँजीवादी राज्यसत्ता क़ायम की जिसमें जनता को बुनियादी जनवादी अधिकार भी हासिल नहीं हैं। वहाँ मज़दूर अपनी ट्रेड यूनियन नहीं बना सकते, सत्ता की पालतू छह पार्टियों के अलावा सभी राजनीतिक पार्टियों पर प्रतिबन्ध है तथा स्वतंत्र पत्रकारों और राजनीतिक कार्यकर्ताओं का दमन आम बात है। सत्ता के ख़िलाफ़ बोलने वाले लोगों की गिरफ़्तारियाँ और हत्या आम बात है। इसके अलावा पूरे प्रशासन तंत्र में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। वर्तमान संकट के पहले तक इस तंत्र पर नज़रबायेव के सगे-सम्बन्धी और अन्य वफ़ादार लोगों का क़ब्ज़ा था। आम जनता इस निरंकुश शासन से आजिज़ आ चुकी है और परिवर्तन चाहती है इसलिए प्रदर्शनों के दौरान नज़रबायेव के ख़िलाफ़ एक नारा "शाल कैत" यानी "बूढ़े आदमी! दफ़ा हो जा" सबकी ज़ुबान पर था। हालाँकि नज़रबायेव ने 2019 में राष्ट्रपति का पद छोड़ दिया था और कासिम तोकायेव का इस पद के लिए चयन किया था लेकिन उसने पूरी तरह सत्ता नहीं छोड़ी और ख़ुद को एक बड़ी शक्तिशाली संस्था 'कज़ाख़स्तान की सुरक्षा परिषद' के चेयरमैन के रूप में स्थापित कर लिया। इसीलिए लोगों को यह लगता था कि नज़रबायेव परदे के पीछे से अभी भी सरकार चला रहा है। नज़रबायेव के राष्ट्रपति पद से हटने के बाद भी शासन-तंत्र में उसके परिवार के लोग और अन्य वफ़ादार बैठे हुए थे जिन्हें तोकायेव ने वर्तमान संकट के दौरान बाहर का रास्ता दिखा दिया है।

स्वतंत्र गणराज्य बनने के तुरन्त बाद आर्थिक संकट के बावजूद कज़ाख़स्तान के पास एक बड़ा लाभ यह था कि उसके पास खनिज पदार्थों, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस के बहुत बड़े भण्डार थे। पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस के ये भण्डार मुख्यतः कज़ाख़स्तान के पश्चिमी प्रदेशों मांगिस्ताओ और अतिराओ में स्थित हैं। कज़ाख़स्तान के निर्यात का 70 प्रतिशत तेल, गैस और अन्य कच्चे माल होते हैं। बाक़ी 15-20 प्रतिशत लौह-धातुओं तथा ताँबा, ज़िंक और यूरेनियम अयस्क से आता है। सोवियत संघ के विघटन के तुरन्त बाद से कज़ाख़स्तान ने नव-उदारवादी नीतियों को लागू किया जिसकी वजह से आज यहाँ 'स्वतंत्र राज्यों के राष्ट्रमण्डल' यानी पूर्व सोवियत संघ के सभी देशों से ज़्यादा प्रति व्यक्ति विदेशी निवेश होता है। यहाँ अमेरिका, नीदरलैण्ड, स्विट्ज़रलैण्ड और चीन जैसे देशों की पूँजी लगी हुई है। लेकिन यह सारी पूँजी पश्चिमी कज़ाख़स्तान के तेल-उत्पादन में और, कुछ हद तक, केन्द्रीय प्रदेशों के धातु-उद्योगों में संकेन्द्रित है। देश की अर्थव्यवस्था के कच्चे मालों के निर्यात पर लगभग पूरी तरह निर्भर होने के कारण यहाँ उद्योग धन्धों का विकास नहीं हुआ और साथ ही कृषि भी पूँजीवादी संकट से ग्रस्त है। इस बीच दक्षिणी कज़ाख़स्तान के ग्रामीण इलाक़ों में जनसंख्या में तेज़ी से बढ़ोत्तरी हुई है लेकिन इस आबादी को रोज़गार देने के लिए पर्याप्त उद्योग धन्धे ही नहीं हैं इसलिए यहाँ बेरोज़गारी बहुत बढ़ गयी है। 2000 के दशक के शुरुआती वर्षों में अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में कच्चे तेल के ऊँचे दाम होने के कारण देश में सकल घरेलू उत्पाद साल दर साल 9-10 प्रतिशत तक रहा। 2007-2008 की वैश्विक आर्थिक मन्दी की वजह से यह दर कुछ कम हुई लेकिन फिर 5-7 प्रतिशत पर पहुँच गयी। आर्थिक वृद्धि के इस दौर में देशी-विदेशी पूँजीपतियों ने बहुत मुनाफ़ा कूटा और इस मुनाफ़े का एक छोटा हिस्सा उन्होंने मज़दूर वर्ग को भी स्थानान्तरित किया, इसलिए एक हद तक प्रति व्यक्ति आय में भी बढ़ोत्तरी हुई जो इस दौर में सत्ता की सापेक्षिक स्थिरता का एक बड़ा कारण था।

2014 में चीन और पश्चिमी देशों की आर्थिक वृद्धि दर कम होने की वजह से उनकी कच्चे तेल, गैस और खनिज पदार्थों की माँग में कमी आयी जिसकी वजह से अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में इन वस्तुओं के दाम गिर गये। इसका कज़ाख़स्तान की अर्थव्यवस्था पर बुरा प्रभाव पड़ा और उसके सकल घरेलू उत्पाद की दर 4.2 से 1.2 प्रतिशत तक गिर गयी। इस वजह से 'कज़ाख़स्तान गणराज्य के राष्ट्रीय फ़ण्ड' में कमी आयी। पहले शासक वर्ग इस फ़ण्ड के एक हिस्से से मज़दूर वर्ग को कुछ रियायतें दे दिया करता था लेकिन फ़ण्ड के संकुचित होते जाने के बाद से ऐसा करना सम्भव नहीं था जिसके फलस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में बहुत कमी आयी। 2020 में कोरोना महामारी के साथ आने वाले आर्थिक संकट ने देश की अर्थव्यवस्था की ख़स्ता हालत को सबके सामने ला दिया। एक तरफ़ तो आमदनी कम हुई वहीं दूसरी ओर आवश्यक वस्तुओं के दामों में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई।

इस प्रकार, हम देख सकते हैं कि कज़ाख़स्तान लम्बे समय से आर्थिक संकट का शिकार था और इस आर्थिक संकट का कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में राजनीतिक संकट में रूपान्तरण बस समय की बात थी। और इस रूपान्तरण का तात्कालिक कारण बना इस वर्ष के आरम्भ में की गयी प्राकृतिक गैस के दामों में दोगुने से भी ज़्यादा की बढ़ोत्तरी। कज़ाख़स्तान में बहुतायत में होने की वजह से प्राकृतिक गैस बहुत सस्ती है इसलिए यह खाना बनाने और घरों को गर्म करने के साथ ही गाड़ियों के ईंधन के रूप में भी प्रयोग में लायी जाती है। 2020 में कोरोना महामारी में लॉकडाउन की वजह से गैस की घरेलू माँग में कमी आयी जिसकी वजह से गैस का उत्पादन करने वाली कम्पनी 'सिबूर' ने गैस का बड़ी मात्रा में निर्यात किया। 2021 में घरेलू माँग फिर से पुराने स्तर पर आ गयी परन्तु निर्यात के ज़रिए होने वाली कमाई को न तो कम्पनी और न ही सरकार छोड़ना चाहती थी। इसलिए सरकार ने गैस के दाम जोकि पहले फ़िक्स होते थे उन्हें 1 जनवरी 2022 से बाज़ार के भरोसे छोड़ने का निर्णय किया। इस नीति की वजह से नये साल की शुरुआत में गैस के दामों में दोगुने से भी ज़्यादा की बढ़ोत्तरी हो गयी जिसके फलस्वरूप आम जनता का राज्यसत्ता के ख़िलाफ़ संचित आक्रोश विस्फोट के रूप में सामने आया।

कज़ाख़स्तान की सरकार तथा मीडिया द्वारा प्रदर्शनकारियों को विदेशी ताक़तों द्वारा समर्थित आतंकवादी घोषित कर दिया गया है। इसके सबूत के तौर पर उन्होंने किर्ग़िज़स्तान के एक आदमी को आतंकवादी बताते हुए मीडिया के सामने पेश किया लेकिन वह किर्ग़िज़स्तान का एक संगीतकार था। फ़ज़ीहत होने पर सरकार को उसे रिहा करना पड़ा। जब सरकार को और कोई "आतंकवादी" नहीं मिला तो उसने घोषणा की कि "आतंकवादियों" की लाशों को उनके साथी मुर्दाघरों से चुरा ले गये हैं। सरकार द्वारा इस तरह की बेशर्मी और झूठ उसकी बौखलाहट को ही दिखाते हैं और यह साफ़ कर देते हैं कि सरकार सत्ता के नशे में इस सच्चाई को स्वीकार नहीं

(पेज 12 पर जारी)

हरियाणा के निजी क्षेत्र के रोज़गार में 75 प्रतिशत स्थानीय आरक्षण के मायने

गत 15 जनवरी से राज्य में 'हरियाणा स्टेट एम्प्लॉयमेण्ट ऑफ़ लोकल कैण्डिडेट्स एक्ट, 2020' को लागू कर दिया है। इस एक्ट के अनुसार हरियाणा राज्य के निजी क्षेत्र में 75 फ़ीसदी नौकरियाँ प्रदेश के निवासियों के लिए आरक्षित कर दी गयी हैं। निजी क्षेत्र में आरक्षण को लागू करने वाला हरियाणा दूसरा राज्य है, इससे पहले आन्ध्रप्रदेश ने प्राइवेट नौकरियों में आरक्षण लागू कर रखा है। इस एक्ट के लागू होने के बाद, अब हरियाणा में निकलने वाली ऐसी निजी भर्तियाँ जिनमें सकल वेतन 30,000 रुपये से कम होगा, उनमें नियोक्ताओं को 75% नौकरियाँ हरियाणा के निवासियों को देनी होंगी। हरियाणा के उप-मुख्यमंत्री दुष्यन्त चौटाला इसे एक ऐतिहासिक फ़ैसला बता रहे हैं। उनका कहना है कि इससे हरियाणा के लाखों युवाओं को रोज़गार मिलेगा। हरियाणा के कुछ बाशिन्दों को खट्टर-दुष्यन्त की "ठगबन्धन" सरकार का यह फ़ैसला स्थानीय रोज़गार के प्रति कुछ सकारात्मक लग सकता है, लेकिन थोड़ी गहराई से इसकी पड़ताल करने पर पता चलेगा कि यह युवाओं को बरगलाने का टोटकाभर ही है। प्राइवेट भर्तियों में आरक्षण के मसले पर कुछ महत्वपूर्ण नुक़्तों पर बात करना बेमानी नहीं होगा।

पहली बात, इस एक्ट को पारित करने में अपनी पीठ थपथपाने वाले जननायक जनता पार्टी (जजपा) के दुष्यन्त चौटाला ख़ुद इस बात को जानते हैं कि इस एक्ट के मायने किसी चुनावी शिगूफ़े से अधिक कुछ भी नहीं होने वाले हैं और यदि पूँजीपतियों को सस्ती और "क़ाबिल" श्रम शक्ति नहीं मिलेगी तो वे पूँजी निवेश को हरियाणा से बाहर देश के अन्य राज्यों में स्थानान्तरित कर देंगे। पूँजीपतियों के कई धड़े ख़ुद भी ऐसी मंशा ज़ाहिर कर चुके हैं। इस बिल के आने के बाद पिछले साल ही 'गारमेण्ट्स एण्ड मैन्यूफ़ैक्चरिंग एसोसिएशन' ने एक आन्तरिक सर्वे करवाया था। इस सर्वे में 82 प्रतिशत पूँजी निवेशकों का यह कहना था कि अगर यह क़ानून वापिस नहीं लिया गया या उद्योग को इसके प्रावधानों से छूट नहीं दी गयी तो वे आगे हरियाणा में पूँजी निवेश नहीं करेंगे। कुछ पूँजीपतियों का तो नंगे तौर पर यह कहना था कि स्थानीय मज़दूरों की जड़ें गहरी होती हैं जिस कारण से उन्हें "कण्ट्रोल करना" मुश्किल होता है, वहीं प्रवासी मज़दूरों के मामले में ऐसा झंझट नहीं होता है। यही कारण है कि पहले से ही इस एक्ट में ऐसे प्रावधान हैं कि कुशल श्रमिकों की कमी होने पर तथा अन्य "विशेष स्थितियों" में स्थानीय प्रशासन की सहमति से प्रवासी श्रमिकों की भर्ती की जा सकती है। ऐसे में स्थानीय प्रशासन की जेब गर्म करना कोई मुश्किल काम नहीं होगा। आई.टी. जैसे क्षेत्रों को पहले ही दो साल तक की छूट दी जा चुकी है और आने वाले समय में इस एक्ट से पार पाने के कुछ रास्ते ख़ुद दुष्यन्त चौटाला ही कम्पनियों को सुझा देंगे। यदि यह एक्ट वास्तविक अर्थों में लागू होता है (जिसकी सम्भावना नगण्य है) तो इसके दो ही परिणाम होंगे – एक तो जोड़-जुगाड़ करके इसका तोड़ निकाल लिया जायेगा तथा दूसरा फिर पूँजी का प्रवाह हरियाणा से निकलकर गुजरात या उत्तरप्रदेश जैसे राज्यों का रुख़ करेंगा, जो पूँजीपतियों के लिए स्वर्ग की तरह हैं। दोनों ही स्थितियों में हरियाणा की बेरोज़गार आबादी की स्थिति में कोई ख़ास फ़र्क़ नहीं पड़ने वाला है। तथा दोनों ही स्थितियों में प्रवासी श्रमिकों को और भी नारकीय हालात में धकेल दिया जायेगा। पूँजी के आर्थिक नियमों के चलते इस तरह के टोटकों से स्थानीय मज़दूर आबादी को तो कुछ ख़ास मिलना नहीं होता उल्टा प्रवासी मज़दूर आबादी और भी अरक्षित स्थिति में पहुँचा दी जाती है।

दूसरी बात, इस समय हरियाणा में बेरोज़गारी की स्थिति अभूतपूर्व है। आपको ज्ञात होगा कि 'सेण्टर फ़ॉर मोनिटरिंग इण्डियन इकॉनमी' (सीएमआईई) की हालिया रिपोर्ट के अनुसार हरियाणा में बेरोज़गारी की दर 34.1 प्रतिशत है जो कि देश में बेरोज़गारी की दर (7.4 प्रतिशत) की लगभग पाँच गुनी है। पिछली सरकारों की तुलना में नौकरियों में और भी महीन और ज़्यादा भ्रष्टाचार देखने को मिल रहा है। बिना पर्ची-ख़र्ची नौकरी देने का ढोल बजाने वाली भाजपा-जजपा सरकार में रिकॉर्ड तोड़ पेपर लीक हुए हैं, भर्तियाँ रद्द हुई हैं तथा नौकरी के बदले अरबों-खरबों की रिश्वत लेने के मामले उजागर हुए हैं। जो थोड़ी-सी सरकारी भर्तियाँ निकाली गयी हैं उनमें से अधिकतर धाँधलेबाज़ी और भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ गयी हैं। सालों-साल पुरानी भर्तियाँ अब तक भी लटकी हुई हैं। 2018 में विज्ञापित की गयी हज़ारों भर्तियों को ख़ुद सरकार ने ही रद्द कर दिया है। आपको जानकर हैरानी नहीं होगी कि रद्द की गयी या की जाने वाली भर्तियों के 9,361 पदों के लिए 27 लाख 18 हज़ार उम्मीदवारों द्वारा आवेदन किया हुआ था। असल में हरियाणा की जनता की बुनियादी ज़रूरतें पूरी करने में नाकाम भाजपा-जजपा की "ठगबन्धन" सरकार ने अपनी छवि गढ़ने के लिए प्राइवेट नौकरियों में आरक्षण का यह लुकमा उछाला है। विभिन्न क्षेत्रीय राजनीतिक पार्टियाँ रोज़गार कम होने का ठीकरा तथाकथित बाहरी लोगों पर फोड़ती रही हैं। हरियाणा में प्राइवेट नौकरियों में 75 प्रतिशत आरक्षण वाला फ़ॉर्मूला भी असल में जजपा का ही दिमाग़ी फ़ितूर है। जजपा ने चुनाव से पहले ही इसका वायदा भी किया था। भाजपा की सरकार चूँकि जजपा के साथ गठबन्धन के बाद ही बन पायी है इसलिए वह भी इस फ़ैसले पर उसकी हाँ में हाँ मिला रही है। यह फ़ैसला पूँजीवादी पार्टियों के बीच के अन्तर्विरोधों को भी दर्शाता है। वास्तव में मौजूदा दौर में पूँजीपतियों की चाकरी बजा रही फ़ासीवादी भाजपा की पहले से ऐसी कोई मंशा नहीं थी। हिन्दू-मुस्लिम के नाम पर मेहनतकश जनता को बाँटने का उसके पास अपना "अधिक कारगर और प्रभावी" साम्प्रदायिक एजेण्डा तो है ही जिससे तात्कालिक तौर पर भी पूँजीपतियों के हित प्रभावित नहीं होते!

तीसरी बात, आज पूरी दुनिया में मुनाफ़े की गिरती दर का संकट गहराया हुआ है और आर्थिक मन्दी इसी की अभिव्यक्ति है। मुनाफ़े की दर का गिरना पूँजीवाद की एक दीर्घकालिक प्रवृत्ति होती है। जब मुनाफ़े की दर गिरती है यानी पूँजीपतियों के लिए लाभप्रद निवेश की सम्भावना नहीं रहती तो उत्पादन में लगने वाली पूँजी सट्टा बाज़ार या शेयर बाज़ार में लगती है। सार्वजनिक उपक्रमों की बर्बादी और सरकारी-अर्धसरकारी रोज़गारों का ख़ात्मा भी इन उपक्रमों को पूँजीपतियों के हवाले करके उन्हें पूँजी निवेश के नये क्षेत्र प्रदान कर व्यवस्था को मन्दी से उबारने का ही असफल प्रयास है। पूँजीवादी व्यवस्था अपने मूल से ही असमान विकास को बढ़ावा देती है। पूँजी को जहाँ सस्ता कच्चा माल और सस्ती श्रमशक्ति मिलेगी यह उसी ओर प्रवाह करेगी। यही कारण है कि भारत के औद्योगिक विकास में हमें इतनी असमानता दिखाई देती है। बेरोज़गारी का असल कारण ख़ुद पूँजीवाद की कार्यप्रणाली में निहित होता है। प्रमुख अन्तर्विरोध पर पर्देदारी करते हुए विभिन्न पूँजीवादी राजनीतिक दल, इनमें भी ख़ासकर क्षेत्रीय दल बाहरी-भीतरी के नाम पर अपनी चुनावी गोटियों को बैठाते रहते हैं और मेहनतकश जनता की एकता को तोड़ने का काम करते हैं।

चौथी और सबसे ख़ास बात, 'हरियाणा स्टेट एम्प्लॉयमेण्ट ऑफ़ लोकल कैण्डिडेट्स एक्ट, 2020' से सबसे अधिक जो प्रभावित होगा वह है प्रवासी मज़दूर आबादी। आम तौर पर भी प्रवासी श्रमिक अपेक्षाकृत अधिक दबाव और शोषण झेलते हैं। कोई स्थानीय सहारा नहीं होने के चलते उन्हें बेहद अमानवीय हालात में जैसे-तैसे खटना पड़ता है। इस एक्ट के बाद प्रवासी श्रमिकों की स्थिति ग़ैर-क़ानूनी व्यक्तियों वाली हो जायेगी। उनके लिए राज्य सरकार द्वारा तय श्रम क़ानूनों की भी कोई क़ीमत नहीं रह जायेगी। कारख़ानेदार उन्हें मनमाने मेहनताने पर खटा सकेंगे और उन्हें ग़ैर-क़ानूनी तौर पर काम पर रखने का रास्ता प्रशासन से साँठ-गाँठ करके वे निकाल ही लेंगे। दूसरी तरफ़ वे इसी बहाने मज़दूरों को दबाकर रखेंगे और बेहद कम मज़दूरी पर काम करवायेंगे कि ये मज़दूर वहाँ ग़ैर-क़ानूनी तौर पर काम कर रहे हैं। इससे प्रवासी श्रमिकों की मज़दूरी को लेकर मोल-भाव करने की ताक़त बेहद कम हो जायेगी। उनसे लगातार इस भय के साथ काम कराया जायेगा कि एक बार उनकी नौकरी चली गयी तो दोबारा उन्हें नौकरी मिलनी असम्भव हो जायेगी और यदि वे पकड़े गये तो उन्हें तमाम उत्पीड़न का सामना करना पड़ेगा।

लुब्बेलुबाब यह है कि निजी क्षेत्र की नौकरियों में 75 प्रतिशत या कितने भी प्रतिशत आरक्षण से बेरोज़गारी की समस्या का कोई हल नहीं होने वाला है। इससे उल्टा मेहनतकश आवाम के संघर्ष और कमज़ोर होंगे। जनता के बीच क्षेत्रीयता की दीवारें और भी मज़बूत होंगी। हमें मेहनतकश जनता को आपस में बाँटने की सरकारों की साज़िशों का विरोध करना चाहिए। और इसके साथ ही हमें हर किसी को पक्के रोज़गार की गारण्टी के साथ "रोज़गार को मूलभूत अधिकार" का दर्जा दिये जाने की लड़ाई को तेज़ करने में जुट जाना चाहिए।

– बिगुल डेस्क

कज़ाख़स्तान में आम मेहनतकश जनता की बग़ावत

(पेज 11 से आगे)

करना चाहती कि प्रदर्शनकारी बाहरी आतंकवादी नहीं बल्कि कज़ाख़स्तान के ही नागरिक हैं जो सत्ता के ख़िलाफ़ बग़ावत करने पर उतर आये हैं।

दूसरी ओर, पश्चिमी देशों के मीडिया में इसे निरंकुश नौकरशाह राज्यसत्ता के भीतर मौजूद अलग-अलग धड़ों के द्वारा सत्ता के लिए संघर्ष या देश की लिबरल शक्तियों के नेतृत्व में जनता द्वारा 'लोकतंत्र' की बहाली के लिए संघर्ष के रूप में प्रचारित किया जा रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि इन प्रदर्शनों के दौरान शासक वर्ग के विभिन्न धड़ों, मुख्यतः नज़रबायेव व तोकायेव धड़ों, के आपसी अन्तर्विरोध खुलकर सामने आ गये हैं। यह कुछ घटनाओं से साफ़ हो जाता है जैसे, नज़रबायेव को एक महत्वपूर्ण पद से हटा दिया गया है, उसके परिवार के लोग शासन तंत्र से बाहर कर दिये गये हैं और नज़रबायेव के ही एक वफ़ादार नौकरशाह और राष्ट्रीय सुरक्षा कमिटी के चेयरमैन करीम मासिमोव को राजद्रोह के आरोप में गिरफ़्तार कर लिया गया है। लेकिन हमें यह समझना होगा कि जब आम मेहनतकश जनता शासक वर्ग के ख़िलाफ़ बग़ावत पर उतर आती है तो अक्सर शासक वर्ग के विभिन्न धड़ों के अन्तरविरोध परदे के बाहर आ जाते हैं और साफ़ दिखाई देने लग जाते हैं। इन अन्तरविरोधों के गहराने के साथ ही राजनीतिक संकट की स्थिति पैदा होती है। राजनीतिक संकट के ही दौर में आम जनता के सत्ता के ख़िलाफ़ विद्रोह का इस्तेमाल अक्सर शासक वर्ग के इस या उस धड़े द्वारा अवसरवादी तरीक़े से दूसरे धड़ों के बरक्स अपने हित साधने के लिए किया जाता है। शासक वर्ग की इस आपसी उठा-पटक की पृष्ठभूमि तथा आधार के रूप में आम मेहनतकश जनता के आन्दोलन को न देख पाने की राजनीतिक रतौंधी पूँजीवादी मीडिया और बुद्धिजीवियों में अक्सर पायी जाती है।

ऐसा होना भी लाज़िमी है कि निरंकुश नौकरशाहाना राज्यसत्ता के ख़िलाफ़ आन्दोलन में लिबरल बुद्धिजीवियों और टुटपुँजिया वर्ग का एक हिस्सा शामिल हो जाये लेकिन इस वर्ग को आन्दोलन की चालक शक्ति मानना एक भूल होगी। इस बग़ावत की शुरुआत देश के उन इलाक़ों से हुई जहाँ बड़ी तादाद में मज़दूर आबादी रहती है जिसमें अपने काम व ज़िन्दगी के बदतर होते हालात की वजह से राज्यसत्ता के ख़िलाफ़ असन्तोष बढ़ता जा रहा था और यह कि देश के अलग अलग इलाक़ों में तेल-मज़दूरों, खान-मज़दूरों, धातु मज़दूरों की हड़तालों के साथ इस चिंगारी ने जंगल की आग की तरह फैलकर लगभग सभी बड़े शहरों और प्रान्तों के बेरोज़गार नौजवानों और निम्न-मध्य वर्ग की एक बड़ी आबादी को अपने दायरे में ले लिया था। इसलिए इस आन्दोलन की चालक शक्ति सर्वहारा वर्ग था जिसके साथ अर्ध-सर्वहारा और निम्न-मध्य वर्ग की एक बड़ी तादाद शामिल थी।

आम मेहनतकश जनता की इस बग़ावत ने कज़ाख़स्तान की पूँजीवादी राज्यसत्ता की चूलें हिला दी थीं। देश के विभिन्न प्रदेशों के प्रशासनिक केन्द्रों पर प्रदर्शनकारियों ने क़ब्ज़ा कर लिया था। आपातकाल लगाने और फ़ौज को सड़कों पर उतार देने के बावजूद सरकार आन्दोलन को कुचल नहीं पा रही थी। शासक-वर्ग के विभिन्न धड़ों के आपसी अन्तरविरोध भी खुलकर सामने आ गये थे। भूतपूर्व राष्ट्रपति लेकिन अभी भी शक्तिशाली नेता को पदच्युत कर दिया गया; राष्ट्रीय सुरक्षा कमिटी के चेयरमैन को राजद्रोह के आरोप में गिरफ़्तार कर लिया गया। सुरक्षा बलों ने कई जगह प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाने से मना कर दिया था। राष्ट्रपति का अपने ही सुरक्षा बलों पर भरोसा ख़त्म हो गया था जिसकी वजह से उसे विदेशी, विशेषकर, रूसी साम्राज्यवाद की फ़ौजों को अपनी ही जनता को कुचलने के लिए बुलाना पड़ा। देश के अमीर लोग अपने निजी हवाई जहाज़ों में देश छोड़ कर भाग रहे थे।

ये सारे तथ्य एक हद तक क्रान्तिकारी परिस्थिति के होने की ओर इंगित करते हैं। लेकिन अगर क्रान्ति की मनोगत शक्तियाँ, यानी वैचारिक और सांगठनिक रूप से क्रान्ति का नेतृत्व करने वाली शक्तियाँ कमज़ोर हों तो वस्तुगत तौर पर क्रान्तिकारी परिस्थिति होने के बावजूद क्रान्ति को अंजाम नहीं दिया जा सकता है। कज़ाख़स्तान में फ़िलहाल क्रान्तिकारी शक्तियाँ बहुत कमज़ोर हालत में हैं और मज़दूर आन्दोलन में उनका दख़ल नहीं के बराबर है। कज़ाख़स्तान की विशिष्ट परिस्थितियों के चलते वहाँ मज़दूरों के संघर्ष का एक इतिहास है इसलिए वहाँ मज़दूर जुझारू तरीक़े से संघर्ष करते हैं और कुछ राजनीतिक माँगों को भी उठाते हैं लेकिन इस सबके बावजूद मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के अभाव में ऐसे जुझारू आन्दोलन भी एक गोल चक्कर में घूमने को अभिशप्त होते हैं। इसलिए कज़ाख़स्तान में एक इन्क़लाबी पार्टी बनाकर ही मज़दूर वर्ग के संघर्षों को उत्तरोत्तर आगे बढ़ाते हुए निरंकुश नौकरशाह पूँजीपति वर्ग के हाथों से सत्ता छीनी जा सकती है। यही बात आज भारत सहित दुनिया के ज़्यादातर मुल्कों पर लागू होती है।

महामारी के दौर में भी यूक्रेन और ताइवान में बजाये जा रहे युद्ध के नगाड़े

साम्राज्यवाद के पास मानवता को देने के लिए उन्माद और तबाही के सिवा कुछ नहीं है

आनन्द

हाल के महीनो में कोरोना वायरस की नयी क़िस्म ओमिक्रॉन के दुनियाभर में फैलने की ख़बर सुर्ख़ियों में रही। ऐसे में किसी मानवीय व्यवस्था में यह उम्मीद की जाती कि दुनिया के तमाम देश एक-दूसरे के साथ सहयोग करते हुए इस वैश्विक महामारी से निपटने में अपनी ऊर्जा ख़र्च करते। लेकिन हम एक साम्राज्यवादी दुनिया में रह रहे हैं। इसलिए इसमें बिल्कुल भी हैरत की बात नहीं है कि वैश्विक महामारी के बीच, एक ओर यूक्रेन में, तो दूसरी ओर ताईवान में युद्ध के नगाड़ों का कानफाड़ू शोरगुल लगातार बढ़ता जा रहा है। पूर्वी यूरोप में काला सागर के आस-पास के इलाक़े एवं पूर्वी एशिया में दक्षिण चीन सागर के इर्द-गिर्द के इलाक़े इस समय साम्राज्यवादी ताक़तों के बीच रस्साकशी के मुख्य अड्डे बने हुए हैं। पश्चिमी मीडिया की मानें तो यूक्रेन को युद्ध के कगार पर लाने के लिए रूस ज़िम्मेदार है और ताईवान में युद्ध जैसे हालात पैदा करने के लिए चीन ज़िम्मेदार है। लेकिन सच तो यह है कि इन दोनों इलाक़ों में जो युद्धोन्माद फैलाया जा रहा है वह साम्राज्यवादी ताक़तों के बीच अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रों का विस्तार करने की होड़ का नतीजा है जिसमें एक ओर अमेरिका व नाटो के साम्राज्यवादी देश हैं तो दूसरी ओर साम्राज्यवादी रूस व चीन हैं। इस अन्तर-साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा से पैदा होने वाली अस्थिरता का ख़ामियाज़ा केवल इन इलाक़ों की मेहनतकश अवाम को ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया की आम मेहनतकश जनता को भुगतना पड़ेगा।

पश्चिमी मीडिया में पिछले कई महीनों से यह दावा किया जा रहा है कि रूस यूक्रेन पर हमला करने वाला है। इस दावे के समर्थन में यह दलील दी जा रही है कि हाल के महीनों में रूस ने यूक्रेन की उत्तरी, पूर्वी व दक्षिणी सीमाओं के आसपास अत्याधुनिक हथियारों से लैस क़रीब एक लाख सैनिकों की तैनाती की है। साथ ही रूस की सेना बेलारूस में सैन्य अभ्यास भी कर रही है। इसके अलावा रूस के राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन के एक हालिया लेख का भी हवाला दिया जा रहा है जिसमें उन्होंने रूस और यूक्रेन की साझा ऐतिहासिक और आध्यात्मिक विरासत की बात करते हुए यह कहा है कि रूस और यूक्रेन के लोग एक ही क़ौम से ताल्लुक़ रखते हैं। लेकिन पश्चिमी मीडिया में आम तौर पर सच्चाई का दूसरा पहलू उजागर नहीं किया जाता है कि हाल के वर्षों में हज़ारों की संख्या में अमेरिका और नाटो के सैनिक और हथियार पूर्वी यूरोप में पोलैण्ड तथा तीन बाल्टिक देशों लिथुआनिया, लातविया और इस्तोनिया में रूस की सीमा की ओर तैनात किये गये हैं। यही नहीं, यूक्रेन के भीतर भी हथियारबन्द अमेरिकी सैनिक पहले से ही मौजूद हैं और अमेरिकी जंगी जहाज़ और जासूसी जहाज़ रूस की सीमा के निकट हवाई गश्त कर रहे हैं। गत 24 जनवरी को अमेरिका ने यह घोषणा की कि क़रीब 50 हज़ार अमेरिकी सैनिक जंगी जहाज़ों, टैंकों और मिसाइलों के साथ पूर्वी यूरोप में रूस की सीमा की ओर कूच करने की तैयारी कर रहे हैं। युद्ध जैसा माहौल बनाने के लिए अमेरिका, ब्रिटेन और कनाडा ने यूक्रेन की राजधानी कीव से अपने सभी राजनयिकों को वापस बुलाने का फ़ैसला किया है। डेनमार्क के एफ़-16 जंगी जहाज़ लिथुआनिया की ओर कूच कर रहे हैं, स्पेन के फ़ाइटर जेट और नौसैनिक काला सागर की ओर कूच कर रहे हैं, फ़्रांसीसी सैनिक रोमानिया की ओर बढ़ रहे हैं और डच एफ़-35 बुल्गारिया के वायुक्षेत्र में गश्त कर रहे हैं।

युद्धोन्माद का यह माहौल दरअसल पूर्वी यूरोप में नाटो और रूस के बीच भूराजनीतिक और आर्थिक हितों के मद्देनज़र अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रों का विस्तार करने को लेकर वर्षों से जारी रस्साकशी का नतीजा है। ग़ौरतलब है कि सोवियत संघ के विघटन के बाद पिछले तीन दशकों के दौरान अमेरिकी नेतृत्व में नाटो ने पोलैण्ड, हंगरी, बुल्गारिया और रोमानिया जैसे पूर्वी ब्लॉक के देशों सहित सोवियत संघ के घटक देशों, जैसे तीन बाल्टिक देशों लिथुआनिया, लातविया और इस्तोनिया और यूक्रेन तक रूस की सीमा के निकट अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार किया है। लेकिन सोवियत संघ के विघटन के बाद लगे झटके से उबरते हुए इक्कीसवीं सदी में रूस ने इन देशों को वापस अपने प्रभाव-क्षेत्र में लाने की ज़ोर-आज़माइश शुरू कर दी। इसी का नतीजा 2008 में रूस द्वारा जॉर्जिया पर हमले के रूप में सामने आया। यूक्रेन इस सदी की शुरुआत से ही नाटो और रूस के बीच जारी खींचतान का मुख्य अड्डा बना हुआ है। 2004 में पश्चिमी देशों की शह पर हुई तथाकथित नारंगी क्रान्ति में आन्तरिक वजहों के साथ ही इस खींचतान की भी एक अहम भूमिका थी जिसके नतीजे के तौर पर पश्चिम समर्थित विक्टर यूश्चेंको सत्ता में आया, हालाँकि 2010 में रूस समर्थित यानुकोविच फिर से सत्ता पर क़ाबिज़ हो गया। 2014 में यानुकोविच के ख़िलाफ़ खड़े हुए यूरोमैदान आन्दोलन में भी पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों की एक भूमिका थी। उसके बाद रूस ने काला सागर तट पर स्थित क्रीमिया प्रायद्वीप पर क़ब्ज़ा कर लिया। ग़ौरतलब है कि क्रीमिया में ही सेवास्तोपोल बन्दरगाह स्थित है जो रूस के नियंत्रण में एकमात्र गरम पानी का बन्दरगाह है और अब रूस काला सागर में एक विशाल पुल के ज़रिए क्रीमिया को भौतिक रूप से भी अपने देश से जोड़ने की तैयारी कर रहा है। यूक्रेन के पूर्वी हिस्से में स्थित दोनबास इलाक़े में अभी भी गृहयुद्ध जैसी स्थिति बनी हुई है जिसमें अब तक 14 हज़ार से ज़्यादा लोगों की जान जा चुकी है। इस इलाक़े में स्थित लुगांस्क और दोनेत्स्क नामक दो राज्य पूरी तरह से रूस के प्रभाव में आ चुके हैं। दोनबास वही इलाक़ा है जहाँ सोवियत संघ के दौर में यूक्रेन में उद्योगों का तानाबाना खड़ा किया गया था। यूक्रेन में कोयले का 75 प्रतिशत भण्डार इसी इलाक़े में स्थित है और यूक्रेन का 30 प्रतिशत निर्यात इसी इलाक़े से होता आया है। ग़ौरतलब है कि यूक्रेन के पूर्वी व दक्षिणी हिस्से में रूसी भाषा बोलने वाले और रूस समर्थकों की बहुतायत है जबकि पश्चिमी व मध्य यूक्रेन में पश्चिमी देशों के समर्थकों की बहुतायत है। इस विशिष्ट जनसांख्यिकी की वजह से भी यूक्रेन के अलग-अलग हिस्सों पर नाटो व रूस का प्रभाव है। रूस यूक्रेन को नाटो और यूरोपीय संघ में शामिल नहीं होने देना चाहता है और वह अमेरिका और नाटो द्वारा यूक्रेन को दी जा रही सैन्य मदद की भी मुख़ालफ़त कर रहा है। यही खींचतान यूक्रेन की अस्थिरता के लिए ज़िम्मेदार है। साथ ही यूक्रेन में जारी युद्धोन्माद का एक कारण विभिन्न साम्राज्यवादी मुल्कों में महामारी के दौर में मन्दी, महँगाई, असमानता, बेरोज़गारी जैसी विकराल होती जा रही समस्याओं से आम जनता का ध्यान भटकाने के लिए शासकों द्वारा अन्धराष्ट्रवाद को हवा देना भी है। हाल के समय में रूस ने बेलारूस और कज़ाक़िस्तान में जनअसन्तोष पर क़ाबू पाने के लिए सोवियत संघ के इन पूर्व घटक देशों में भी अपनी पैठ मज़बूत की है।

यह सब एक ऐसे समय में हो रहा है जब अमेरिकी साम्राज्यवाद बीसवीं सदी के अन्तिम दशकों में अपने उरूज़ पर पहुँचने के बाद अब ढलान पर है और रूस व चीन का संयुक्त साम्राज्यवादी ख़ेमा अपने उभार पर है और साम्राज्यवादी दुनिया की चौधराहट अपने हाथ करने के लिए प्रयासरत है। इक्कीसवीं सदी में इराक़, सीरिया और हाल ही में अफ़ग़ानिस्तान से बेआबरू होकर लौटे अमेरिकी साम्राज्यवादी अब अपना पूरा ज़ोर चीन और रूस के गठबन्धन का मुक़ाबला करने में लगा रहे हैं। हालाँकि नाटो के उसके सहयोगी साम्राज्यवादी देश रूस और चीन के साथ अपने सम्बन्ध बिगाड़ना नहीं चाह रहे हैं। मिसाल के लिए यूक्रेन के मसले पर यूरोपीय देश उतनी शिद्दत के साथ रूस के ख़िलाफ़ नहीं बोल रहे हैं जितना अमेरिका चाहता है। इसकी वजह यह है कि यूरोपीय देशों में गैस की खपत का 40 प्रतिशत रूस से आता है। रूस पश्चिमी साइबेरिया से बाल्टिक सागर होते हुए जर्मनी तक पाइप लाइन के ज़रिए जर्मनी में गैस पहुँचाने की नॉर्ड स्ट्रीम 2 परियोजना पर काम कर रहा है जिसके पूरा हो जाने के बाद उसे यूक्रेन के ज़रिए यूरोप तक गैस पहुँचाने वाले ख़र्चीले रास्ते को बाईपास करने का मौक़ा मिल जायेगा। इस वजह से जर्मनी रूस पर किसी क़िस्म का प्रतिबन्ध लगाने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखा रहा है।

जहाँ पूर्वी यूरोप के काला सागर के क्षेत्र में रूस की गतिविधियाँ अमेरिकी साम्राज्यवादियों के लिए परेशानी का सबब बन रही हैं वहीं दूसरी ओर पूर्वी एशिया में दक्षिण चीन सागर के इलाक़े में चीन की गतिविधियाँ अमेरिकी साम्राज्यवाद के सिरदर्द का कारण बनी हुई हैं। चीन पर नकेल कसने के लिए अमेरिका ने अफ़ग़ानिस्तान में मिली शिकस्त के बाद 'क्वाड' और 'ऑकस' नामक दो संस्थाएँ बनायी हैं। 'क्वाड' में अमेरिका के अलावा जापान, भारत और ऑस्ट्रेलिया शामिल हैं जबकि 'ऑकस' में अमेरिका के अलावा यूके और ऑस्ट्रेलिया शामिल हैं। इस घेरेबन्दी के बावजूद पिछले कुछ महीनों के दौरान ताईवान में चीन के फ़ाइटर जेट और वारशिप का ताईवान के इर्दगिर्द मँडराने और अमेरिका और यूरोपीय देशों का ताईवान की स्वतंत्रता के पक्ष में बयान देने के बाद से लगातार तनाव की स्थिति बनी हुई है।

इन तमाम अन्तर-साम्राज्यवादी अन्तर्विरोधों के लगातार तीखे होने की वजह से बहुत-से लोग तीसरे विश्वयुद्ध के छिड़ जाने की आशंका व्यक्त कर रहे हैं। लेकिन आज की दुनिया में संरक्षित बाज़ार की ग़ैर-मौजूदगी और एक ही देश में कई साम्राज्यवादी देशों की पूँजियों के लगे होने की वजह से विश्वयुद्ध जैसी स्थिति बनने की सम्भावना फ़िलहाल बेहद कम है, हालाँकि साम्राज्यवादी युद्ध के कई रंगमंच दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में तैयार हो सकते हैं। जैसा हमने ऊपर देखा कि जहाँ एक ओर नाटो और रूस में तनातनी चल रही है वहीं दूसरी ओर रूस के साथ आर्थिक सम्बन्ध क़ायम किये रखना भी यूरोप के साम्राज्यवादी देशों के हित में है। इसी प्रकार चीन की अर्थव्यवस्था के तार भी अमेरिकी अर्थव्यवस्था और यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्था से काफ़ी क़रीबी से जुड़े हैं। ऐसे में प्रत्यक्ष युद्ध जैसी स्थिति सभी साम्राज्यवादी देशों के पूँजीपति वर्ग के लिए नाज़ुक हालात पैदा कर सकती है। लेकिन साम्राज्यवादी अन्तर्विरोधों के एक हद से ज़्यादा गहराने पर किसी बड़े पैमाने के युद्ध की सम्भावना से बिल्कुल इन्कार भी नहीं किया जा सकता है। इसी वजह से एक ओर साम्राज्यवादी देश युद्ध की धमकी देते हुए युद्धोन्माद फैला रहे हैं लेकिन उसके साथ ही प्रत्यक्ष युद्ध की घोषणा करने में आनाकानी कर रहे हैं। लेकिन युद्धोन्माद की जो स्थितिबनायी जा रही है उसमें इस बात की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि हालात साम्राज्यवादियों के नियंत्रण से बाहर हो जायें और युद्धोन्माद वास्तविक युद्ध की ओर बढ़ जाये। जो भी हो इतना तो तय है कि यूक्रेन और ताईवान दोनो ही देशों में आने वाले दिनों में अस्थिरता बढ़ने ही वाली है और अफ़सोस की बात है कि किसी क्रान्तिकारी ताक़त की ग़ैर-मौजूदगी में फ़िलहाल इस अस्थिर परिस्थिति का लाभ दक्षिणपन्थी, अन्धराष्ट्रवादी ताक़तें उठाने में कामयाब होती दिख रही हैं। लेनिन ने बताया था कि साम्राज्यवादी युद्ध को क्रान्तिकारी गृहयुद्ध में तब्दील करना क्रान्तिकारी पार्टी का कार्य होता है। लेकिन ऐसा करने के लिए मज़दूर वर्ग की इन्क़लाबी पार्टी का होना अनिवार्य है।

भगतसिंह ने कहा

सभ्यता का यह प्रासाद यदि समय रहते सँभाला न गया तो शीघ्र ही चरमराकर बैठ जायेगा। देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निर्माण करें। जब तक यह नहीं किया जाता और मनुष्य द्वारा मनुष्य का तथा एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का शोषण, जिसे साम्राज्यवाद कहते हैं, समाप्त नहीं कर दिया जाता तब तक मानवता को उसके क्लेशों से छुटकारा मिलना असम्भव है, और तब तक युद्धों को समाप्त कर विश्व-शान्ति के युग का प्रादुर्भाव करने की सारी बातें महज़ ढोंग के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं। क्रान्ति से हमारा मतलब अन्ततोगत्वा एक ऐसी समाज-व्यवस्था की स्थापना से है जो इस प्रकार के संकटों से बरी होगी और जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा। और जिसके फलस्वरूप स्थापित होने वाला विश्व-संघ पीड़ित मानवता को पूँजीवाद के बन्धनों से और साम्राज्यवादी युद्ध की तबाही से छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकेगा।

('बम काण्ड पर सेशन कोर्ट में बयान' का एक अंश)

उम्मीद है आयेगा वह दिन

खदान मज़दूरों के जीवन पर एमील ज़ोला के प्रसिद्ध उपन्यास के अंश

इस बार 'मज़दूर बिगुल' के पाठकों के लिए प्रस्तुत है फ़्रांस के प्रसिद्ध लेखक एमील ज़ोला के उपन्यास 'जर्मिनल' का एक अंश। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक द्रोणवीर कोहली ने इसका अनुवाद 'उम्मीद है आयेगा वह दिन' नाम से किया है। 'जर्मिनल' की घटनाएँ उन कोयला खदानों की बड़ी दुनिया में घटित होती हैं जिन्हें फ़्रांस के उदीयमान पूँजीवाद के लिए ऊर्जा का प्रमुख स्रोत होने के नाते उस समय सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्योग का दर्जा हासिल हो चुका था। बेहद ख़तरनाक स्थितियों में धरती के अँधेरे गर्भ में उतरकर हाड़तोड़ मेहनत करने वाले अनुशासित मज़दूरों की भारी आबादी खनन उद्योग की बुनियादी ज़रूरत थी। आधुनिक युग के ये उजरती ग़ुलाम खदानों के आसपास बसे खनिकों के गाँवों में नारकीय जीवन बिताते थे। एकजुटता इस नये वर्ग की उत्पादक कार्रवाई से निर्मित चेतना का एक बुनियादी अवयव थी और उसकी एक बुनियादी ज़रूरत भी। 'जर्मिनल' खदान मजदूरों की ज़िन्दगी के वर्णन के साथ-साथ मज़दूर वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच के सम्बन्धों का प्रामाणिक चित्र उपस्थित करता है। साथ ही, यह खदान मजदूरों की एक हड़ताल के दौरान और उसके बाद घटी घटनाओं का मूल्यांकन प्रकारान्तर से उस दौर के उन राजनीतिक आन्दोलनों के सन्दर्भ में भी करता है जो सर्वहारा वर्ग की समस्याओं के अलग-अलग समाधान तथा उनके अलग-अलग रास्ते प्रस्तुत कर रहे थे। मोटे तौर पर ऐसी तीन धाराएँ उस समय यूरोप में मौजूद थीं—मार्क्सवाद, अराजकतावाद और ट्रेडयूनियवाद। – सम्पादक

सभा प्लां-दे-दाम में रखी गयी थी। वहाँ पिछले दिनों बड़ी संख्या में पेड़ काट डाले गये थे। सो, काफ़ी खुली जगह बन गयी थी। हल्की-सी ढलान भी थी, जिसके चारों तरफ़ ऊँचे-ऊँचे पेड़ थे। एकदम सीधे और बराबर तनों वाले 'बीच' पेड़ों के झुरमुट थे, जिनके सफ़ेद-सफ़ेद तनों पर लाइकेन वनस्पति के ध्ब्बे-से दिखायी पड़ते थे। जिन विशाल पेड़ों को काटकर डाला गया था, वे अब भी वहाँ पड़े थे। बायीं ओर चिरी लकड़ी का टाल-सा लगा था। धुँधलका होने के साथ-साथ सर्दी भी बढ़ने लगी थी और नीचे गिरी सिवार और वनस्पतियाँ पैरों तले आकर चटचटाने लगती थीं। धरती पर तो एकदम अँधेरी रात थी, लेकिन ऊपर धुँधले आकाश में ऊँची टहनियों की काली छाया दिखायी पड़ती थी, जहाँ उभरता चन्द्रमा शीघ्र ही सितारों की रोशनी को मन्द कर देगा।

क़रीब तीन हज़ार खान मज़दूर इस खुली जगह पर आकर इकट्ठा हो गये थे—क्या मर्द, क्या औरतें, क्या बच्चे। भीड़ उमड़ी पड़ती थी। लोग आते जा रहे थे और खाली जगह को भरते जा रहे थे और फिर पेड़ों के नीचे भी फैल जा रहे थे। तिस पर भी आनेवालों का ताँता लगा था। अन्धकार में डूबे मानव सिरों का समुद्र वहाँ तक ठाठें मार रहा था जहाँ तक झाड़ियाँ उगी थीं। हल्की-हल्की मरमराहट-सी सुनायी पड़ जाती थीं। निकट खड़े लोग सुन रहे थे। एक तो लवाक था, जिसकी मुट्ठियाँ भिंची हुई थीं। दूसरा पियरों था, जो उनकी तरफ़ पीठ करके खड़ा था और इसलिए व्याकुल हो रहा था कि बीमारी का स्वाँग अब नहीं कर पाया। फिर बोनमोर्त और बूढ़ा मूक था, जो एक ठूँठ पर साथ-साथ बैठे थे और गहरी सोच में डूबे लगते थे। उनके पीछे मसखरी करने वाले लोग खड़े थे—जकारी, मूके और दूसरे लोग, जो सबकी खिल्ली उड़ाने के इरादे से ही आये थे।

इनके विपरीत, स्त्रियाँ एकदम गम्भीर बनी खड़ी थीं, मानो चर्च में आयी हों। ला लवाक दबी ज़बान में गाली-गुफ़्तार कर रही थी और ला माह्द बिना कुछ बोले-चाले, बस, सिर हिलाकर प्रतिक्रिया प्रकट करती थी। फ़िलोमेन खाँस रही थी, क्योंकि जाड़े के कारण साँस लेने में उसे तकलीफ़ होती थी। मूकेत ही ऐसी औरत थी जिसका चेहरा खिला हुआ था। वह प्रसन्न इस बात से थी कि ला ब्रूले अपनी बेटी को फटकारते हुए कह रही थी कि तू एकदम बेहूदी छोकरी है। कहती थी—माँ को इसलिए कहीं भेज दिया था इसने ताकि पीछे बैठकर ख़ुद सारा खरगोश चट करे। एकदम बेहया लड़की है, जो अपने मरद की कायरता के कारण मुटिया रही है! यांलैं टाल के ऊपर चढ़ गया था। फिर लिडी को भी उसने खींचकर अपने साथ बैठा लिया और बेबेर को झिड़ककर कहा कि वह ऊपर क्यों नहीं आता। आकाश की पृष्ठभूमि में उनकी आकृतियाँ सबसे ऊपर दिख रही थीं।

वास्तव में, झगड़ा रासनर ने ही शुरू किया था। वह चाहता था कि संसदीय प्रणाली का अनुसरण करते हुए कमेटी चुनी जाये। बां-ज़्वाइयो में हारने से वह तिलमिलाया हुआ था और इस फ़िराक में था कि किसी तरह बदला चुकाये। वह डींग मार रहा था कि प्रतिनिधियों के ही नहीं, खान मज़दूरों के सामने जाकर खड़े होने की देर है, खोयी प्रतिष्ठा वह पुनः प्राप्त कर लेगा। एतियन समझता था कि जंगल के बीच किसी कमेटी की बात सोचना निरी मूर्खता है। क्या ये लोग नहीं जानते कि जंगली जानवरों की तरह उनका पीछा किया जा रहा है? अब इंक़लाबी तौर-तरीके अपनाने की ज़रूरत थी।

एतियन ने जब देखा कि यह बहस-मुबाहिसा तो ख़त्म होने वाला नहीं, सो वह दौड़ा और धरती पर पड़े पेड़ के तने पर खड़ा हो गया और सबका ध्यान आकर्षित करने के लिए ऊँचे स्वर में बोला: 'कामरेडो! कामरेडो!'

रासनर ने प्रतिवाद किया, तो माह्द ने उसका मुँह बन्द कर दिया। भीड़ में जो बड़बड़ाहट-कुड़कुड़ाहट-सी हो रही थी, वह भी धीरे-धीरे थम गयी।

एतियन गर्जन-तर्जन के साथ बोल रहा था: 'कामरेडो! उन लोगों ने हमारे बोलने पर पाबन्दी लगायी है, और हमारे पीछे पुलिस भी छोड़ रखी है, मानो हमने कोई अपराध किया हो। यही वजह है कि इस जगह पर आकर सभा करने के अलावा हमारे पास कोई चारा नहीं था। यहाँ हम आज़ाद हैं। यह हमारा अपना घर है। यहाँ हमारी ज़बान को कोई पकड़ नहीं सकता, जिस तरह कोई परिन्दों का या जानवरों का बोलना बन्द नहीं कर सकता।'

भीड़ ने चिल्ला-चिल्लाकर उसका समर्थन किया।

'हाँ, यह जंगल हमारा है। यहाँ हमें बोलने का हक है... बोलो, बोलो।'

एक क्षण एतियन तने पर निश्चल-सा खड़ा देखता रहा। चन्द्रमा अभी बहुत नीचे था और चाँदनी सबसे ऊपर वाली टहनियों पर पड़ रही थी। अँधेरे में डूबी भीड़ धीरे-धीरे शान्त और स्थिर होती जा रही थी। एतियन भी एकदम छाया-सा लग रहा था—देखकर ऐसे लगता था जैसे अन्ध्कार में कोई शलाका खड़ी हो।

एतियन ने बाँह उठाकर धीरे-धीरे बोलते हुए भाषण शुरू किया। लेकिन उसके स्वर में अब वह गर्जन-तर्जन नहीं था। उसने ऐसा सन्तुलित लहजा अपनाया, जैसा कि जनता का साधरण प्रतिनिधि सारी स्थिति की जानकारी देने के लिए बोलता है। सबसे पहले उसने वही बातें कहीं जिन पर पुलिस के मुखिया ने बां ज़्वाइयों में रोक लगायी थी। इसके बाद उसने हड़ताल का सारा इतिहास बताया और वैज्ञानिक शब्दावली की उधार ली गयी शैली में अपनी बात समझाने की कोशिश की। सिर्फ़ तथ्य ही उसने बताये और तथ्यों के अलावा और कोई बात नहीं कही। उसने कहा कि वह हड़ताल के ख़िलाफ़ है, खान मज़दूर भी तो हड़ताल नहीं करना चाहते थे। मगर उन्हें हड़ताल करने को विवश होना पड़ा है, क्योंकि प्रबन्धकों ने खान में बल्लियाँ-शहतीर लगाने की मजूरी अलग से देने की प्रणाली लागू कर दी है। फिर उसने प्रतिनिधियों की पहली मुलाक़ात के बारे में बताया जो मैनेजर के बँगले पर हुई थी, और प्रबन्धकों की बदनीयती की चर्चा की। फिर ऐसी ही दूसरी मुलाक़ात का ज़िक्र किया जिसमें उन्होंने दो सांटीम की रियायत देने की बात कही थी, और यह रकम असल में वही थी जिसे उन्होंने मज़दूरों से छीनने की कोशिश की थी। यह था सारा किस्सा-कोताह।

इसके बाद उसने उस ख़र्च का हिसाब उनके सामने रखा जिस कारण इमरजेंसी फ़ण्ड ख़त्म हो गया था और यह भी बताया कि बाहर से जो धन आया, उसका उपयोग भी किस तरह किया गया, और फिर कुछ वाक्यों में इण्टरनेशनल यानी कि प्लूकार्ट और दूसरे लोगों का पक्ष लेते हुए बताया कि किस तरह वे दुनिया को फ़तह करने की लड़ाई लड़ रहे हैं और इस लड़ाई में आनेवाली कठिनाइयों के कारण वे क्यों यहाँ के मज़दूरों की ज़्यादा मदद नहीं कर पा रहे हैं। इसीलिए हालात दिन-ब-दिन बिगड़ते जा रहे हैं—कम्पनी हाज़िरी की किताबें लौटा रही है और बेल्जियम से मज़दूरों को लाने की बात कहकर डरा रही है और इसके साथ-साथ उनके उन साथियों को भी धमकियाँ देने लगी है जो थोड़ा डगमगा रहे हैं। यही नहीं, कुछेक खान मज़दूरों को बहला-फुसलाकर उन्होंने काम पर आने के लिए राज़ी भी कर लिया है।

एतियन एक ही लहजे में बोलता जा रहा था, जैसे इन सारी अप्रिय बातों के बारे में उन्हें कायल करना चाहता हो। कहता था कि भूखों मरने की नौबत आ गयी है और आशा का दामन छूटता जा रहा है, संघर्ष करते-करते हिम्मत पस्त होने लगी है। मगर फिर एकाएक अपनी आवाज़ बुलन्द करते हुए उसने संक्षेप में दूसरी बातें बतायीं।

'कामरेडो! इन हालात में आप लोगों को आज यहाँ फ़ैसला करना होगा। क्या हड़ताल जारी रखना चाहते हैं? अगर हाँ, तो कम्पनी को झुकाने के लिए क्या किया जाना चाहिए?'

तारों भरे आसमान के नीचे एकदम सन्नाटा छा गया। अन्धकार की चादर में अदृश्य भीड़ इन दहला देने वाले शब्दों की मार से जैसे एकदम मौन और अवाक् हो गयी थी। उस वक्त, बस, एक ही आहट थी—पेड़ों में से छनकर आती भीड़ की हताश आहें!

एतियन ने फिर बोलना शुरू किया। अबके उसका स्वर एकदम भिन्न था। ऐसे बोल रहा था, जैसे किसी यूनियन का सेक्रेटरी नहीं, बल्कि फ़ौज का कमाण्डर हो, कोई धर्मप्रचारक हो, जो सच्चाई का दिग्दर्शन कराने आया हो। वह कह रहा था—क्या तुम लोग इतने कायर हो कि काम पर वापस जाना चाहते हो? क्या बेकार ही महीने भर से तकलीफ़ें बरदाश्त करते आ रहे हो? क्या टाँगों में पूँछ दबाकर तुम लोग कोयला-खानों मे चले जाओगे? क्या अपनी तकलीफ़ों का सिलसिला फिर से शुरू करने को तैयार हो, जिन्हें ज़माने भर से भोगते आ रहे हो? क्या यह बेहतर नहीं होगा कि हम इसी वक्त जान दे दें जिससे कामगारों को भूखों मारनेवाले पूँजीपतियों के अत्याचारों का अन्त हो? क्या वह वक्त नहीं आ गया कि भूख के आगे नासमझ लोगों की तरह घुटने टेकना बन्द करें? अगर इस वक्त घुटने टेकोगो, तो भुखमरी से ऐसे हालात फिर पैदा हो जायेंगे कि शान्त से शान्त आदमी भी फिर से बग़ावत करने के लिए मजबूर हो जायेगा...

और इस तरह एतियन ने शोषण की चक्की में पिसते खान मज़दूरों की तस्वीर पेश की। बोला कि जब भी मालिकों को होड़ में क़ीमतें घटानी पड़ जाती हैं, तो तबाही लाने वाले इस संकट की सारी मार किस तरह मज़दूरों को ही को झेलनी पड़ती है और ऐसे हालात पैदा हो जाते हैं कि भुखमरी की नौबत आ जाती है। नहीं! बल्लियाँ-शहतीर लगाने के लिए मजूरी की नयी प्रणाली हमें मंज़ूर नहीं—इसकी ओट में कम्पनी बचत करना चाहती है। यह कोशिश है एक-एक मज़दूर की हर रोज एक घण्टे की मजूरी हड़प लेने की और इस बार तो इन लोगों ने हद ही कर दी है। अब वह दिन दूर नहीं जब दीन-दुखी लोग धीरज खो बैठेंगे और इंसाफ़ लेकर रहेंगे।

एतियन तनिक रुका। वह बाँहें पसारे देख रहा था। 'इंसाफ़' शब्द कानों में पड़ते ही भीड़ में उत्तेजना फैल गयी थी। और लोग ज़ोर-ज़ोर से तालियाँ बजाने लगे थे और करतल-ध्वनि ऐसे गूँज रही थी, जैसे आँधी में सूखे पत्ते सरसराते हैं।

'इंसाफ़!...! इंसाफ़ हो! इंसाफ़ हो!'

एतियन धीरे-धीरे जोश में आता

(पेज 15 पर जारी)

उम्मीद है आयेगा वह दिन

(पेज 14 से आगे)

जा रहा था। रासनर की तरह उसे कोई बात एकदम साफ़-स्पष्ट और सहज तरीके से कहने का तरीका तो आता नहीं था। प्रायः उपयुक्त शब्द ही नहीं मिलते थे और वह अपने ही वाक्यों में उलझकर रह जाता था और सायास बोलने से सारी देह तन जाती थी। मगर इसका एक फ़ायदा यह मिलता था कि हकलाते-लड़खड़ाते हुए उसे मज़दूरों के कठोर परिश्रम को अभिव्यक्त करने वाले कुछ ऐसे सटीक रूपक सूझ जाते थे जो श्रोताओं के दिलों को गहराई तक छू लेते थे। फिर एक मज़दूर के हाव-भाव—कोहनियों को पीछे ले जाना, भिंची हुई मुट्ठियों के साथ उन्हें आगे लाना, जबड़ों को इस तरह भींचना मानो काटने को तत्पर हो—इन सबका मज़दूरों पर विलक्षण प्रभाव पड़ता। हरेक की ज़बान पर एक ही बात होती—बहुत बड़ा आदमी तो नहीं है यह, लेकिन अपनी बात कहने का ढब जानता है।

'वेतन ग़ुलामी का ही एक नया ढंग है,' वह थरथराते स्वर में बोलता जा रहा था। 'कोयला-खान पर मिल्कियत खान मज़दूर की होनी चाहिए, बिल्कुल उसी तरह, जिस तरह समुन्दर मछुआरे का होता है, उसी तरह जिस तरह ज़मीन की मिल्कियत किसान की होती है... मेरी बात आप लोग ग़ौर से सुनें। कोयला-खान तुम लोगों की है, यानी उन सब लोगों की है जिन्होंने सौ साल से ज़्यादा समय तक अपने ख़ून से, अपने दुख-दर्द से इसकी कीमत अदा की है!'

...

'हाँ, बिलकुल सही कहता है, बिलकुल सही कहता है!'

इस स्थल पर एतियन ने अपना प्रिय विषय उठाया - उत्पादन के उपकरणों पर सामूहिक नियंत्रण, और जब वह अपने इस सिद्धान्त को शब्दों में व्यक्त करने लगता था, तो अपनी बेढब-सी शब्दावली का प्रयोग करके एकदम उल्लसित हो उठता था। उसमें एक ज़बरदस्त तब्दीली आ गयी थी। जिस तरह नया मुल्ला ऊँची बाँग देता है, उसी तरह उसे यह कहने की झक सवार हुई थी कि वेतन-प्रणाली में सुधार करने की आवश्यकता है—और उसने यह राजनीतिक सिद्धान्त प्रतिपादित करना शुरू किया था कि वेतन-प्रणाली को पूरी तरह समाप्त कर देना चाहिए। उसके समष्टिवाद ने—जो बां ज़्वाइयो की सभा होने तक अमूर्त और लोकोपकारी था—अब एक जटिल कार्यक्रम का रूप ले लिया था, जिसके प्रत्येक पक्ष की वह वैज्ञानिक विवेचना करने लगता था। वह यह कल्पना किया करता था कि राज्य या राष्ट्र को नष्ट करके ही स्वाधीनता प्राप्त की जा सकती है। उसके बाद, जब सरकार पर जनता का नियंत्रण हो जायेगा, तभी सुधार कार्य आरम्भ होगा: यानी प्राचीन कम्यून वाले जीवन का आविर्भाव होगा, ओछे और दमनकारी परिवार की जगह समतावादी और स्वतन्त्र परिवार की स्थापना होगी, नागरिक, राजनीतिक और आर्थिक मामलों में पूर्ण समानता होगी और श्रम के उपकरणों का तथा श्रमजनित फल का अधिग्रहण करके वैयक्तिक स्वाधीनता सुनिश्चत की जायेगी, और अन्ततः निःशुल्क तकनीकी प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जायेगी जिसका सारा खर्च समाज वहन करेगा। इन सब उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पुराने भ्रष्ट समाज का आमूलचूल रूपान्तरण करना आवश्यक होगा।

एतियन ने विवाह-प्रथा तथा उत्तराधिकार की पद्धति पर भी आक्रमण किया और व्यक्तिगत धन-सम्पदा की सीमा भी निर्धारित की, और मृत शताब्दियों के अन्यायपूर्ण कीर्ति-स्तम्भों को भी ध्वस्त करना शुरू किया—ये सब बातें उसने एक हाथ को हवा में भाँज-भाँजकर कही। उसके हाव-भाव उस दरांती की तरह थे जो पकी फसल को काटती जाती है। फिर, दूसरे हाथ से उसने भावी मानवता का निर्माण करने की बात प्रतिपादित करनी शुरू की, सच्चाई और इंसाफ़ की ऐसी इमारत की तामीर की जो बीसवीं शताब्दी के आगमन के साथ खड़ी होगी। ...

'अब हमारी बारी है,' अन्ततः वह चिल्लाकर बोला। 'अब सत्ता और सम्पत्ति लेने की बारी हमारी है!'

सारा वन उसकी जय-जयकार करने लग गया। तब तक चाँद अपनी चाँदनी से उस सारे स्थल को नहला चुका था और मनुष्यों के सिरों का उमड़ता सागर एकदम साफ दिखायी पड़ने लगा था जो बड़े-बड़े धूसर पेड़ों के तनों के बीच झाड़-झंखाड़ की अस्पष्ट पंक्ति तक ठाँठे मार रहा था। उस हिमानी आकाश तले उत्तेजित चेहरों का वह विशाल जनसमूह था—जो धधकती आँखों से देख रहे थे, मुँह खुले थे उनके, एक-एक व्यक्ति जोश से उफन रहा था। भुखमरी के कगार पर पहुँचे स्त्री-पुरुषों-बालकों को खुला आमन्त्रण दिया जा रहा था कि वे उस प्राचीन थाती को न्यायतः लूट लें जिससे उन्हें बेदखल किया गया है। अब तो उन्हें जाड़ा भी नहीं सता रहा था। एतियन के गर्म शब्दों ने उन्हें एकदम भीतर तक तपा दिया था। एक प्रकार की श्रद्धापूर्ण उत्प्रेरणा उन्हें धरती से उठाकर ऊपर ले गयी थी। यह बिल्कुल वैसी ही आशावादिता थी जैसी कि शुरू-शुरू के ईसाइयों में हुआ करती थी, जो भावी न्यायपूर्ण शासन-पद्धति के लिए पलकें बिछाये रखते थे। उसके अनेक वाक्य इतने अस्पष्ट थे कि उनके पल्ले पड़ ही नहीं सकते थे। तकनीकी और अमूर्त तर्क-वितर्क भी उनकी समझ में नहीं आ सकता था। मगर प्रतीत होता था इस दुर्बोधता और अमूर्तता ने उनके भीतर और अधिक आशाओं का संचार कर दिया था और वे उस दैदीप्यमान, चकाचौंधपूर्ण भविष्य की ओर आस लगाये देखने लगे थे। यह कैसा स्वप्न था! - वे लोग मालिक बनेंगे, सारे कष्ट, दुख-दर्द मिट जायेंगे और अन्ततः सारी धन-सम्पदा पर उन्हीं का स्वत्व हो जायेगा।

'यह सही बात है। अब हमारी बारी है!... शोषण करने वाले... मुर्दाबाद!'

...तभी वे हैरान होकर क्या देखते हैं कि बूढ़ा बोनमोर्त पेड़ के तने पर खड़ा है और इतने कोलाहल में भी अपनी बात कहने की कोशिश कर रहा है। अभी तक तो वह और मूक अपनी ही उधेड़बुन में लगे थे, मानो अपने बीते दिनों की यादों में खोये हों। अब निस्सन्देह बोनमोर्त उस आवेग को स्वर देने के लिए बड़बड़ा रहा था जिसके वशीभूत उसके भीतर विगत यदा-कदा इतनी शिद्दत के साथ सिर उठाता था कि उसके अन्तस्थल से पुरानी स्मृतियाँ उबलकर बाहर आने लगती थीं और ऐसे में जब बोलना शुरू करता था, तो घण्टों बोलता रहता था, थकता ही नहीं था।

एकदम शान्ति छा गयी थी और सब लोग इस बूढ़े की बात सुनने को आतुर थे। चाँदनी में बोनमोर्त की आकृति एकदम ज़र्द-सी लगती थी। चूँकि उसने ऐसी-ऐसी बातें कहनी शुरू कर दी थीं जिसका सीधा सम्बन्ध यहाँ होने वाले विचार-विमर्श से बिल्कुल नहीं था। सो लोग मुँह बाये देखे जा रहे थे। बोनमोर्त लम्बे-चौड़े क़िस्से बयान कर रहा था जिनका कोई सिर-पैर नहीं था। एक तो उसने अपनी जवानी का किस्सा सुनाया। फिर अपने दो चाचा-ताऊ का किस्सा छेड़ दिया जो लावोरअ में कुचलकर मारे गये थे। फिर उसने निमोनिया की बात बतायी, जिसने उसकी पत्नी की जान ले ली थी। लेकिन ये सब क़िस्से सुनाते हुए भी उसने अपनी इस धारणा को विस्मृत नहीं किया: वह बता रहा था कि हालात कभी अच्छे नहीं थे और न कभी अच्छे होंगे। उदाहरण देते हुए कह रहा था कि तब पाँच सौ लोग यहाँ इस जंगल में एकत्र हुए थे, क्योंकि बादशाह ने काम के घण्टे घटाना मंज़ूर नहीं किया था। मगर इस क़िस्से को बीच में ही छोड़ उसने एक और हड़ताल का किस्सा छेड़ दिया: कितनी ही हड़तालें वह अपनी आँखों से देख चुका है। सबका अन्त इन्हीं पेड़ों के नीचे हुआ—यहाँ प्लां-दे-दाम में, वहाँ ला शारबोनियर में या उससे भी और आगे सो-द्यु-लू की तरफ। कभी कड़ाके की सर्दी होती थी, कभी गर्मी का मौसम। एक शाम तो इतनी तेज़ बारिश हुई थी कि उन्हें एक शब्द भी सुने बिना भागना पड़ा था। फिर बादशाह के फ़ौजी आते थे और रायफ़ल की गोलियों के साथ सारा खेल ख़त्म हो जाता था।

'हम इस तरह हाथ खड़े करके हलफ़ लेंगे कि हम नीचे कोयला-खान में हरगिज़ नहीं जायेंगे... ओह, मैंने तो हलफ़ ले लिया है, मैंने हलफ़ ले लिया है।'

भीड़ मुँह बाये बेचैनी के साथ खड़ी थी। एतियन सारा तमाशा देख रहा था। एकाएक कूदकर वह पेड़ के गिरे तने पर खड़ा हो गया और बूढ़े बोनमोर्त को भी अपनी बग़ल में खड़ा कर लिया। तभी क्या देखता है कि शावाल अपने दोस्तों के बीच सबसे आगे खड़ा है। उसे देखते ही उसे लगा कि हो न हो, कैथरीन भी यहीं कहीं होगी। यह बात ज़हन में आते ही उसके भीतर एक नयी ज्वाला फूट पड़ी। उसके भीतर यह इच्छा जोर मारने लगी कि कैथरीन भी उसकी जय-जयकार होते हुए देखे।

'कामरेडो! आपने हमारे बुज़ुर्गवार की बातें सुनीं—कैसी-कैसी मुसीबतें इन्होंने झेली हैं, कैसे-कैसे कष्ट हमारे बच्चे झेलेंगे अगर हम इन चोरों और हत्यारों का सफ़ाया हमेशा के लिए नहीं कर डालते।'

एतियन का भीषण रूप देखते ही बनता था। आज तक उसने इस प्रकार की उग्र बात मुँह से कभी नहीं निकाली थी। बूढ़े बोनमोर्त को उसने एक बाँह से थाम रखा था और उसका प्रदर्शन ऐसे कर रहा था जैसे वह गरीबी-कंगाली, दुख-दारिद्रय का ध्वज हो। फिर बोला कि हम बदला लेंगे। फिर जल्दी-जल्दी कुछ वाक्य बोलकर उसने माह्द का उल्लेख किया और बताया कि इस सारे परिवार को कोयला-खान ने किस तरह सताया है, कम्पनी ने उसे बरबाद करके छोड़ दिया है। और देखो, आज भी यह परिवार—सौ साल तक खटने-मरने के बाद भी—पहले से कहीं ज़्यादा भूख का शिकार है। फिर तुलना करने के लिए उसने बोर्ड के तोंदुल सदस्यों का खाका खींचा, जो थैलीशाह बने बैठे हैं और वो जो स्टॉकहोल्डर हैं, वे भी कैसे अय्याशों की तरह रहते हैं और तिनका तक तोड़कर दुहरा नहीं करते और खान मज़दूरों की कमाई पर पलते हैं। कितनी घिनौनी बात है?—कोयला-खानों में दुनिया मर-खप रही है, बाप से लगाकर बेटे तक, क्या इसलिए कि मिनिस्टरों की मुँहभराई दी जा सके, और अभिजात, कुलीन और बूर्जुआ वर्ग के लोग पार्टियाँ देते फिरें और गर्म कमरों में बैठे मुटियाते रहें?

एतियन ने खान मज़दूरों की बीमारियों का भी अध्ययन किया था। अब वह उनकी पूरी सूची उनके सामने रखकर और विस्तार से बताने लगा, जिन्हें सुनकर दिल दहल जाता था: जैसे, अनीमिया, कण्ठमाला, काली खाँसी, दमा, लकवा। बता रहा था कि वे लोग कितने अभागे हैं कि उन्हें मशीनों के आगे पशु चारे की तरह डाला जाता है, गाँवों में ढोर-डंगरों की तरह हाँका-खदेड़ा जाता है। बड़ी-बड़ी वे सब कम्पनियाँ उन्हें निगलती जा रही हैं जो इसी कोशिश में रहती हैं कि गरीबी यहाँ से जाये ही नहीं। ये लोग देश के सभी कामगारों, लाखों कामगारों को अपनी एड़ी के नीचे रखने की दुरभिसन्धि करते रहते हैं, ताकि कुछ हज़ार निठल्ले लोग बैठकर गुलछर्रे उड़ा सकें। लेकिन खान मज़दूर अब इतने नादान नहीं, धरती के नीचे रहने वाले जानवर नहीं। खानों की गहराइयों से एक फ़ौज पैदा हो रही है, नागरिकों की फसल पैदा हो रही है, बीज अंकुरित हो रहा है और किसी दिन धूप में एकाएक धरती का सीना चीरकर वह फूट निकलेगा। फिर देखेंगे कि साठ साल के ऐसे आदमी को चालीस बरस की नौकरी के बाद वे कैसे फ़कत डेढ़ सौ फ्रैंक की पेंशन देने की हिम्मत करते हैं जो थूकता है तो उसके गले से कोयला निकलता है और उसकी टाँगें कोयला-खान के पानी में खड़े-खड़े सूज जाती हैं। जी हाँ, मज़दूर पूँजीपति से, उस व्यक्तित्वहीन देवता से हिसाब माँगेगा जिसके बारे में मज़दूर को कोई ज्ञान नहीं है और जो अपने रहस्यमय डेरे में कहीं पोढ़ता रहता है और उन भूखे-प्यासे लोगों की ही जान लेने को उद्यत रहता है जो उसका पेट भरते हैं। मज़दूर उसे ढूँढेंगे और विवश करेंगे कि वह उस विनाशकारी अग्नि के प्रकाश में अपना चेहरा दिखाये और फिर उसे रक्त में बोड़ देंगे—उस घिनौने सुअर को, उस विकराल बुत को जो मनुष्य मांस का भक्षण करता है!

वह चुप खड़ा देख रहा था, लेकिन उसकी बाँहें तब भी पसरी हुई थीं। वह अब भी "उधर वाले शत्रु" की तरफ इशारा कर रहा था। जानता नहीं था कि वह शत्रु है "किधर" लेकिन होगा तो यहीं कहीं आख़िर। इस बार भीड़ ने इतना तुमुलघोष किया कि मोंसू में बैठे बूर्जुआओं के कान खड़े हो गये और वे वैनदाम वन की तरफ फैली-फैली आँखों से देखने लगे कि कहीं भयंकर रूप से भू-स्खलन तो नहीं हो रहा।

लोहा गर्म था। एतियन ने चोट मारने की सोची।

'कामरेडो! क्या फ़ैसला है तुम लोगों का?... हड़ताल जारी रखना चाहते हो?'

'हाँ, हाँ!' सब गर्जन-तर्जन के साथ बोले।

'तो ऐसा करने के लिए क्या कदम उठाये जायें?... अगर कोई कायर सुबह कोयला-खान में जाते हैं, तो समझो कि हमारी हार हुई है।'

भीड़ ने एक बार फिर आवाज़ बुलन्द की।

'बुज़दिल... मुर्दाबाद, मुर्दाबाद!'

'तो आप लोग तसदीक करते हैं कि उन लोगों को अपने फ़र्ज़ की, उस हलफ़ की याद दिलायी जाये जो उन्होंने लिया है... तो अब हम ऐसा कर सकते हैं कि जाकर कोयला-खानों के बाहर खड़े हो जाते हैं। विश्वासघात करने वालों की समझ में बात आ जायेगी कि वे मनमर्ज़ी नहीं कर सकते, और कम्पनी भी देखेगी कि हम सबमें एका है—हम प्राण दे देंगे, लेकिन घुटने नहीं टेकेंगे।'

'ठीक है, ठीक है, चलो, चलो, कोयला-खानों की तरफ चलो!'

डाक पंजीयन : SSP/LW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

जनता का जीवन रसातल में तो चुनावबाज़ पार्टियों की सम्पत्तियाँ शिखरों पर क्यों?

– अरविन्द

हाल ही में एडीआर (असोसिएशन फ़ॉर डेमोक्रेटिक रिफ़ॉर्म्स) नामक संस्था ने विभिन्न पूँजीवादी चुनावबाज़ पार्टियों की सम्पत्तियों और उनकी देनदारियों का विवरण पेश किया है। चुनावी चन्दा लेने में सबसे आगे रहने वाली भाजपा सम्पत्ति के मामले में भी सबसे आगे है। भाजपा की कुल घोषित सम्पत्ति सात पार्टियों की कुल घोषित सम्पत्ति का क़रीब 70 प्रतिशत है। एडीआर ने अपनी रिपोर्ट में सात राष्ट्रीय बुर्जुआ पार्टियों और 44 क्षेत्रीय बुर्जुआ पार्टियों की सम्पत्तियों की जानकारी दी है। पूँजीवादी व्यवस्था के संकट के दौर में फ़ासीवादी भारतीय जनता पार्टी की सम्पत्तियों में दिन दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ोत्तरी हो रही है। एडीआर का यह ब्यौरा चुनावबाज़ पार्टियों के द्वारा 2019-20 के वित्त वर्ष के दौरान घोषित किये गये सम्पत्ति के आँकड़ों के आधार पर तैयार किया है। कहना नहीं होगा कि यह घोषित धन पानी में तैर रहे बर्फ़ के टुकड़े का पानी के बाहर वाला ही हिस्सा है। बर्फ़ के टुकड़े के पानी के भीतरी हिस्से की तरह अघोषित धन का एडीआर को भी कोई अता-पता नहीं है। किस पार्टी का कितना अघोषित धन देश-विदेश में दबा पड़ा होगा या बाज़ार में लगा होगा इसकी हम-आपको कोई जानकारी नहीं है।

पूँजीपतियों की पहली पसन्द के तौर पर अब भी भाजपा ही सबसे आगे!

राष्ट्रीय पार्टियों द्वारा 6988 करोड़ 57 लाख रुपये की कुल घोषित सम्पत्ति में अकेली भाजपा का हिस्सा 4847 करोड़ 78 लाख रुपये है जोकि सभी पार्टियों की सम्पत्तियों का तक़रीबन 70 प्रतिशत बैठता है। वित्त वर्ष 2017 में भाजपा की कुल घोषित सम्पत्ति 1213 करोड़ 13 लाख तो वित्त वर्ष 2018 में 1483 करोड़ 35 लाख थी। इसी से अन्दाज़ा लग जाता है कि भाजपा असल में सेवा किसकी कर रही है और बदले में उसे मेवा कौन दे रहा है। वहीं भाजपा की तुलना में पूँजीपति वर्ग की सबसे पुरानी पार्टी कांग्रेस की कुल घोषित सम्पत्ति मात्र 588 करोड़ 16 लाख रुपये है जिससे बसपा भी अपनी 698 करोड़ 33 लाख रुपये की सम्पत्ति के साथ आगे है यानी दूसरे स्थान पर है। सीपीएम, तृणमूल कांग्रेस, सीपीआई और एनसीपी क्रमशः चौथे से सातवें स्थान तक हैं। फ़ासीवादी भाजपा बड़े पूँजीपति वर्ग की सबसे चहेती पार्टी बनी हुई है। देश की मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था में मुनाफ़े की गिरती दर के संकट ने, जोकि "अति उत्पादन" व आर्थिक मन्दी के तौर पर अभिव्यक्त हो रहा है, इस समय देश के हालात विस्फोटक बना दिये हैं। 2007-08 से ही देश की अर्थव्यस्था मन्द मन्दी का शिकार है। यह मन्द मन्दी बीच-बीच में गहरा भी जाती है। भयंकर बेरोज़गारी, ग़रीबी, मुफ़लिसी, महँगाई जैसी पूँजीवाद की नेमतों की वजह से जनता बिलबिला रही है। ऐसे में लोग अपने असल हालात और इसके पीछे के कारणों को समझकर इस व्यवस्था को उखाड़ फेंकने की तरफ़ बढ़ सकते हैं। ठीक इसीलिए पूँजीपति वर्ग को फ़ासीवादी पार्टी भाजपा की ज़रूरत है। भाजपा जनता के असली मुद्दों को हिन्दू-मुसलमान, मन्दिर-मस्जिद और फ़र्ज़ी राष्ट्रवाद की आड़ में छुपा सकती है और ऐसा करने में संघ परिवार कामयाब भी हो रहा है। यही कारण है पूँजीपति वर्ग बारिश की तरह भाजपा की झोली में पैसे की बरसात कर रहा है।

2014 में भाजपा के सत्ता में आने के बाद के पिछले सात साल से इसे लगातार सबसे अधिक चन्दा मिल रहा है। चुनाव आयोग को सौंपी गयी वार्षिक फ़ण्ड रिपोर्ट में ख़ुद भाजपा ने यह जानकारी दी है कि उसे कॉर्पोरेट और व्यक्तिगत फ़ण्ड से ही साल 2019-20 में 785 करोड़ रुपये चन्दा मिला है। यह कांग्रेस को मिले 139 करोड़ के कुल चन्दे से पाँच गुणा अधिक है। इलेक्टोरल बॉण्ड्स से मिलने वाला चन्दा पार्टियों की आय का प्रमुख ज़रिया होता है क्योंकि इसमें देने वाले का विवरण साझा करना ज़रूरी नहीं होता है। चुनावबाज़ पार्टियों को वित्त वर्ष 2019-20 में ही इलेक्टोरल बॉण्ड्स से कुल 3429 करोड़ 56 लाख रुपये की राशि चन्दे के रूप में प्राप्त हुई है। इसका 87.29 फ़ीसदी हिस्सा अकेली चार पार्टियों को मिला है। इसमें भी भाजपा का हिस्सा सबसे अधिक है। इलेक्टोरल बॉण्ड्स से भाजपा को 2555 करोड़ रुपये मिले तो कांग्रेस को इससे मात्र 317 करोड़ 86 लाख रुपये प्राप्त हुए। यह चीज़ पूँजीपति वर्ग के सामने कांग्रेस की अप्रासंगिकता को भी दर्शाती है।

देश के धन्नासेठों की ओर से मिलने वाले घोषित चन्दे का ही ब्यौरा सामने आ पाता है। अघोषित तौर पर चुनावी पार्टियों और इनके नेताओं की तिजोरियों में कितना पैसा पहुँचता है उसका विवरण तो किसी के भी पास नहीं है। यही पैसा काले धन के रूप में विभिन्न धन्धों में लगा होता है, यही पैसा स्विस, पनामा और पैराडाइज़ जैसे टैक्स हैवन्स से घूमकर एफ़डीआई के तौर पर देश में दोबारा आता है और सफ़ेद हो जाता है। संकट के इस दौर में पूँजीपति वर्ग भाजपा पर मेहरबान है। पूँजीपति वर्ग की ओर से होने वाली मूसलाधार धनवर्षा के बदले में भाजपा भी जनता के संघर्षों को दबाने-कुचलने और उसे आपस में लड़ाने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ रही है।

चुनावबाज़ पार्टियों के छलके ख़ज़ाने और जनता का हाल बेहाल!

लेखा वर्ष 2019-20 में सात राष्ट्रीय चुनावी दलों की कुल घोषित सम्पत्ति 6988 करोड़ 57 लाख रुपये है। वहीं लेखा वर्ष 2016-17 में इनकी कुल घोषित सम्पत्ति 3260 करोड़ 81 लाख रुपये थी। 44 क्षेत्रीय पार्टियों की कुल घोषित सम्पत्ति 2129 करोड़ 38 लाख रुपये है। पूँजीपति वर्ग के विभिन्न धड़ों का प्रतिनिधित्व करने वाली ये पार्टियाँ अपने आक़ाओं की बदौलत मालामाल हो रही हैं। इनकी सम्पत्तियों का प्रमुख स्रोत होता है इन्हें मिलने वाला चन्दा। इन्हें मिलने वाले चन्दे का बड़ा हिस्सा मज़दूर वर्ग और आम जनता की मेहनत और उनके संसाधनों को निचोड़ने वाला पूँजीपति वर्ग और उसके विभिन्न चुनावी ट्रस्ट देते हैं। साल 2018 के आँकड़े देखें तो भाजपा को 92 फ़ीसदी चन्दा तो कांग्रेस को 85 फ़ीसदी चन्दा कॉर्पोरेट कम्पनियों और बड़े पूँजीपति घरानों से मिला था। इसके अलावा बड़े दुकानदार, धनी किसान, व्यापारी, व्यवसायी, ठेकेदार, उच्च आय सम्पन्न नौकरीपेशा उच्च मध्यवर्ग के लोग भी इन्हें चन्दा देते हैं।

जिस आम आदमी के नाम पर ये दल चुनावी गटरगंगा में उतरते हैं उसका हाल किसी से छुपा हुआ नहीं है। भारत में रहने वाली आबादी वैसे तो दुनिया की आबादी का छठा हिस्सा है लेकिन दुनिया की ग़रीब व कंगाल आबादी का आधा हिस्सा अकेले भारत में रहता है। हाल ही में आयी ऑक्सफ़ैम की रिपोर्ट बताती है कि हालिया वर्ष 2021 में 84 प्रतिशत घरों की आमदनी तेज़ी से घटी है। वहीं भारत के 100 सबसे अमीर परिवारों की आमदनी में बेतहाशा बढ़ोत्तरी हुई है। देश के 98 धन्नासेठों के पास उतना धन इकट्ठा हो गया है जितना देश के 55 करोड़ लोगों के पास भी नहीं है। वहीं देश में खरबपतियों की संख्या 102 से बढ़कर 142 हो गयी है। कहना नहीं होगा कि केन्द्र और राज्य स्तर पर विभिन्न पार्टियों की सरकारों ने महामारी के समय भी पूँजीपतियों को अपना ख़ज़ाना भरने का मौक़ा दिया है।

पूँजीपति वर्ग और शासक वर्ग के विभिन्न धड़े मज़दूरों, ग़रीब किसानों और आम मेहनतकश जनता की मेहनत और कुदरत को लूटते हैं। विभिन्न पार्टियों की सरकारें इस लूट को आसान बनाने का काम करती हैं। पूँजीपति वर्ग कमेरे वर्ग की श्रमशक्ति की अकूत लूट में से ही चन्दे के नाम पर चन्द टुकड़े चुनावबाज़ पार्टियों के सामने उछाल देता है। इसी से पूँजीपति वर्ग की विभिन्न पार्टियों के ख़ज़ाने में उछाल आ जाता है। विभिन्न प्रकार का भ्रष्टाचार व देश की ज़मीनों और संसाधनों पर क़ब्ज़ा भी चुनावबाज़ पार्टियों की सम्पत्तियों में बढ़ोत्तरी करता है।

संशोधनवादी वामपन्थी पार्टियाँ भी सम्पत्ति के मामले में पीछे नहीं हैं

सम्पत्ति के मामले में नामधारी वामपन्थी पार्टियाँ भी देश की चोटी की पाँच घोषित बुर्जुआ पार्टियों की पंगत में विराजमान हैं। हालाँकि उनकी तुलना में इनकी सम्पत्ति काफ़ी कम है। माकपा (सीपीएम) की कुल घोषित सम्पत्ति 569 करोड़ 52 लाख है जबकि भाकपा (सीपीआई) की कुल घोषित सम्पत्ति 29 करोड़ 78 लाख है। सम्पत्ति के मामले में सात राष्ट्रीय चुनावबाज़ पार्टियों में माकपा चौथे तो भाकपा छठे स्थान पर हैं। ये पार्टियाँ दम तो मज़दूर वर्ग की राजनीति का भरती हैं लेकिन मज़दूर वर्ग को अर्थवाद व संविधानवाद के गोल घेरे में गोल-गोल घुमाकर काम असल में पूँजीपति वर्ग की दूसरी सुरक्षा पंक्ति का करती हैं। मार्क्सवाद की क्रान्तिकारी अन्तर्वस्तु को इन्होंने (भाकपा ने 1951 में और माकपा 1964 में इसके बिना ही पैदा हुई थी) तिलांजली दे दी है इसीलिए इन्हें संसोधनवादी कहा गया है। संशोधनवादी वामपन्थी पार्टियों को छोटे पूँजीपति वर्ग, संगठित सफ़ेद कॉलर कुलीन मज़दूर और संगठित क्षेत्र के कुछ अन्य मज़दूर, मध्यवर्ग का एक छोटा हिस्सा, धनी व उच्च-मध्यम पूँजीवादी किसान वर्ग के कई हिस्से चन्दा देते हैं। इसके अलावा इनकी अर्थवादी ट्रेड-यूनियनों से जुड़े कर्मचारी भी इन्हें चन्दा देते हैं जोकि पार्टी फ़ण्ड में भी आता है। इन पार्टियों के ही अनुसार वित्त वर्ष 2020 में सीपीएम को 93 करोड़ दो लाख रुपये और सीपीआई को तीन करोड़ दो लाख रुपये चन्दा प्राप्त हुआ था।

जो जिसका (पैसा) खाता है वह उसीका (हुक्म) बजाता है!

कुल मिलाकर कहा जाये तो पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजीपति तो मालामाल होते ही हैं, इनके हितों का प्रतिनिधित्व करने वाली विभिन्न चुनावबाज़ पार्टियाँ भी मालामाल रहती हैं। जो जिसका खाता है वह उसी का हुक्म बजाता है! पूँजीवादी व्यवस्था को बनाये रखने के लिए विभिन्न पूँजीवादी दल वोट का खेल खेलते रहते हैं। एक ओर जनता की आँखों पर लोकतंत्र के भ्रम का पर्दा पड़ा रहता है और दूसरी ओर उसकी लूट बदस्तूर जारी रहती है। पूँजीपति वर्ग के द्वारा जनता की मेहनत और कुदरत की लूट में से कुछ हिस्सा चुनावबाज़ पार्टियों को भी दे दिया जाता है। यही नहीं कई बार तो धन्नासेठ, नेता और माफ़िया एक ही व्यक्ति होता है। आज पूँजीपति वर्ग को भाजपा जैसी फ़ासीवादी पार्टी की सबसे अधिक ज़रूरत है इसलिए वह उसी पर सबसे अधिक धन लुटा रहा है। बदले में भाजपा भी पूँजीपरस्त नीतियों के द्वारा पूँजीपति वर्ग की सेवा कर रही है। नोटबन्दी, एफ़डीआई, जीएसटी, नेप, सार्वजानिक क्षेत्रों की बर्बादी और मौद्रीकरण इसी के पर्याय हैं। देश के कमेरे लोग व्यवस्था को अन्त तक न पहुँचा दें इसलिए फ़ासीवादी भाजपा अन्य चुनावबाज़ पार्टियों से अलग स्तर पर जाकर जनता को धर्म-जाति-क्षेत्र के नाम पर बाँटने में लगी रहती है और अपने आक़ाओं के नमक का क़र्ज़ अदा करती है।

हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन के कमाण्डर, देश के सच्चे क्रान्तिकारी सपूत, आज भी सच्ची आज़ादी और इन्साफ़ के लिए लड़ रहे हर नौजवान के प्रेरणास्रोत

चन्द्रशेखर आज़ाद

के शहादत दिवस (27 फ़रवरी) के अवसर पर

शहादत थी हमारी इसलिए
कि आज़ादी का बढ़ता हुआ सफ़ीना
रुके न एक पल को
मगर ये क्या, ये अँधेरा?
ये कारवाँ रुका क्यों है?
बढ़े चलो, कि अभी काफ़िला-ए-इन्क़लाब को
आगे, बहुत आगे जाना है....

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, ातगंज, लखनऊ-226006